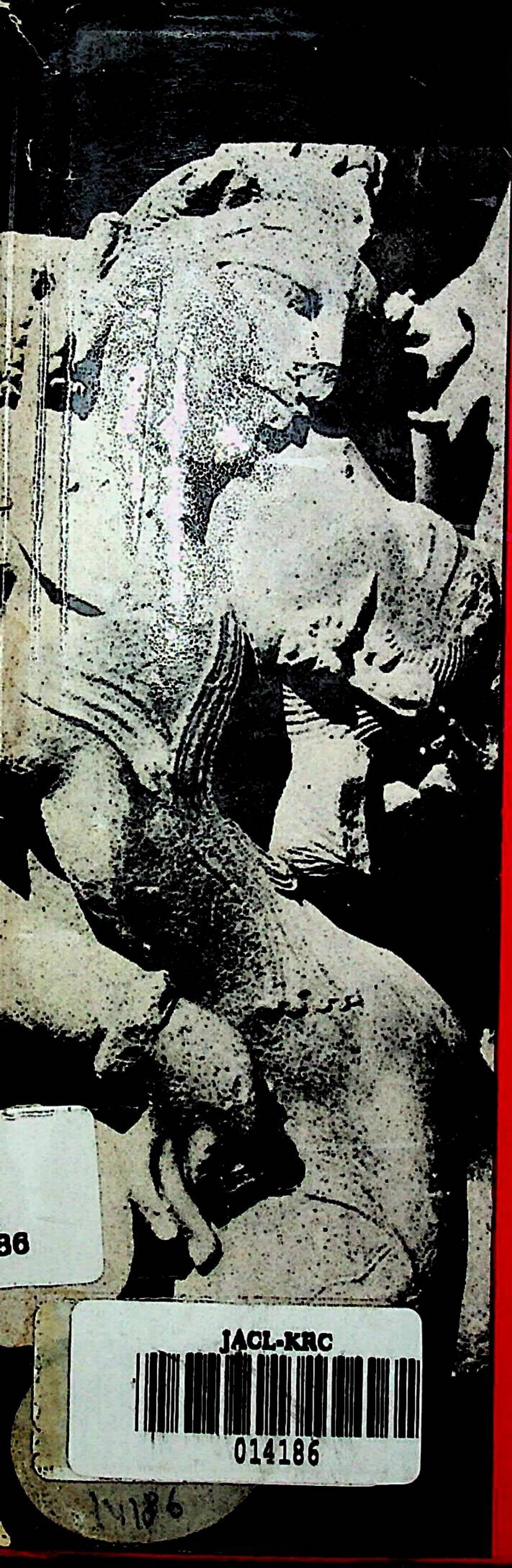

महामतिपद्मश्रीविरचितं

नागरसर्वस्वम्

श्रीजगज्ज्योतिर्मल्लप्रणीतसंस्कृत-
व्याख्ययाऽनाविलाख्यहिन्दीव्याख्यया
च समलङ्कृतम्

सम्पादकः
आचार्य बाबूलाल शुक्ल शास्त्री

86
JACL-KRC
014186
14186

पद्मश्रीकृत नागर-सर्वस्व कामशास्त्र पर रचित प्रकरण ग्रन्थ है जिसे नागरकवृत्त के प्रकाश में साम्प्रयोगिक, औपनिषदिक तथा पारदारिक जैसे कामसूत्र के अधिकरणों के आधार पर शास्त्र के कुछ चुने हुये सीमित विषयों के विवरण ही रखे गये हैं। इनमें प्रतिपाद्य विषयों को ३८ परिच्छेदों में विभक्त कर प्रस्तुत किया गया है। इसमें इसो दाम्पत्यभाव के फल को सुत प्राप्ति बतलाकर ग्रन्थ को पूर्ण किया गया है। ये सभो विषय एक नागरक पुरुष के सेवन के उपयुक्त साध्य तथा साधन को ध्यान में रखकर रखे गए थे जो वात्स्यायनानुगत रूप में भो है।

भारतीय संस्कृति की आधार भूमि पुरुषार्थ-चतुष्ट्य (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) होने से सभी मानवीय अपेक्षाएँ इन्हीं चार पुरुषार्थों में अन्तर्निहित दिखलाई देती है। इसी प्रकार मानवीय कलेवर में भी शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा नामक चार अङ्ग हैं जो अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थों की अपेक्षा की पूर्ति प्रदान (आदि) कार्य सम्पन्न करते हैं। इनमें शरीर के पोषण तथा संवर्धन की पूर्ति 'अर्थ' नामक पुरुषार्थ से, धर्म की पूर्ति 'बुद्धि' तथा आत्मा के द्वारा, मन तुष्टि 'काम' नामक पुरुषार्थ से तथा आत्मा के द्वारा परमशान्तिरूप 'मोक्ष' पुरुषार्थ से पूर्ति होती है।

इसी जगत् में संसार शब्द को गृहस्थी के रूप में अर्थतः लेकर संसारी या गृहस्थ को संसारी पद से भी अभिहित करते रहे हैं। इसी संसारी या गृहस्थ की दाम्पत्यमयी स्थिति का स्मति, पुराण, शास्त्र, धर्मशास्त्र, भारतीय चित्रकला तथा साहित्य में वर्णन तथा विवरण रखा गया है।

रु० १५०.००

सर

CSUJPR
14186

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान जयपुर
परिसर

वर्गीकरण सं. ....
पुस्तक सं. 14186 ... दिनाङ्क ... 14186 ....

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक ....

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चाहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा।

जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक ....

SV-2024

महाममतिपद्मश्रीविरचितं

नागरसर्वस्वम्

श्रीजगज्ज्योतिर्मल्लप्रणीतसंस्कृतव्याख्ययाऽनाविलाख्यया
हिन्दीव्याख्यया च समलङ्कृतम्

तच्च

आचार्य श्री बाबूलालशुक्लशास्त्रिणा

(म. प्र. शासन साहित्य परिषदा सम्मानितेन)

कालिदास अकादेमी अनुसन्धान विभागाधिकारिणा टिप्पणी-प्रस्तावना
परिशिष्टहिन्दीव्याख्यादिना संयोज्य संस्कृत्य च सम्पादितम् ।

पुस्तकालय
21/3

222
21.3.93

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 14186

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 14186

ईस्टर्न बुक लिंकर्स
दिल्ली :: (भारत)

प्रकाशक :

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

५८२५, न्यू चन्द्रावल जवाहर नगर

दिल्ली-११०००७

दूरभाष २५२०२८७

© प्रकाशक

प्रथम संस्करण : १९९४

ISBN : ८१-८५१३३-९९-९

मूल्यः रु० १५०.००

JACL-KRC

014186

लेजर कम्पोजिंग :

अमर प्रिंटिंग प्रैस

८/२५ विजय नगर, दिल्ली-९

दूरभाष : ७२५२३६२

MAHAMATI PADMASHRI'S

NĀGAR SARVASWAM

With Jagadjyotirmall's Sanskrit and Pandit Babulal Shukla Shastri's Anāvilā Hindi Commentry

Edited by

Professor Babulal Shukla Shastri

(Honored by the M.P. Govt.; (Sahitya Parished)

Professor and Special officer for Higher Research

Kalidasa Akademi, Ujjain)

EASTERN BOOK LINKERS

DELHI :: INDIA

Published by :
EASTERN BOOK LINKERS
5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar,
Delhi-110007
Phone : 2520287

© Publisher

First Edition : 1994

ISBN : 81-85133-99-9

Price : Rs. 150.00

Laser Typesetting and Printing by :
Amar Printing Press
8/25, Vijay Nagar, Delhi-9
Phone : 7252362

विषयानुक्रमणिका

परिच्छेदक्रम		विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
परिच्छेद प्रथम		त्रिवर्ग-निर्णय	१-७
परिच्छेद द्वितीय		शरीर प्रसाधन तथा वासगृह-प्रसाधन	७-१०
"	तृतीय	रत्नपरीक्षण	१०-१३
"	चतुर्थ	गन्धाधिकार	१४-१९
"	पञ्चम	भाषा-संकेतक	१९-२२
"	षष्ठ	अंगसंकेत	२३-२४
"	सप्तम	पोटली-संकेत	२४
"	अष्टम	वस्त्रसंकेत	२६-२७
"	नवम	ताम्बूलसंकेत	२७-२८
"	दशम	पुष्पमाला-संकेत	२८-२९
"	एकादश	सर्वसंकेत कथन	२९-३०
"	द्वादश	औषधप्रयोग	३०-३५
"	त्रयोदश	हावादिभावनिर्देश	३५-५१
"	चतुर्दश	रतिविवेक	५१-५७
"	पञ्चदश	स्वदाररक्षणादि साधन	५८-६३
"	षोडश	बालादिप्रभेद तथा उनके लालनादि कथन	६३-६८
"	सप्तदश	मानोदय तथा चन्द्रकला की शरीर पर स्थिति-कथनादि	६८-७०
"	अष्टादश	नाडी का संक्षोभण तथा भावना-चक्रोपदेश	७०-७४
"	एकोनविंश	मदनाडीस्वभाव कथन	७४-७७
"	विंश	देशादिभेद से स्त्री का विषयादि-स्वरूप-कथन	७८-८३

परिच्छेद एकविंश	चुम्बनादि के सात प्रभेद	८३-८५
„ द्वाविंशति	नखक्षत के आठ प्रभेद	८५-८७
„ त्रयोविंशति	दन्तक्षत के आठ प्रभेद	८७-८९
„ चतुर्विंशतितम	आलिंगन के दस प्रकार	८९-९३
„ पञ्चविंशति	निश्शद्वचुम्बन के सप्त-प्रभेद-कथन	९३-९५
„ षड्विंशति	जिह्वाप्रवेश के त्रिविध प्रकार	९५
„ सप्तविंशति	चूषण के चार विभेद	९६-९७
„ अष्टाविंशति	उत्तानकरणों के २४ प्रभेदों का विवरण	९७-१०२
„ एकोन्तत्रिंशत्तम	पार्श्र्वकरण के सात प्रभेद कथन	१०२-१०४
„ त्रिंशत्तम	आसीन करण के दो भेद	१०४-१०५
„ एकत्रिंशत्तम	अधोमुखकरण के दो भेद	१०६
„ द्वात्रिंशत्तम	उत्थितकरण के सात प्रभेदों का विवरण	१०७-१०९
„ त्रयस्त्रिंशत्तम	ताडनकर्म के तीन प्रभेद	१०९-११०
„ चतुस्त्रिंशत्तम	मर्दनक्रिया के चार प्रभेद	११०-१११
„ पञ्चत्रिंशत्तम	ग्रहण-कर्म के चार प्रभेदों का विवरण	१११-११२
„ षट्त्रिंशत्तम	अंगुलिप्रवेश के छः प्रभेद	११२-११३
„ सप्तत्रिंशत्तम	वामाचरित प्रकाश तथा उसके पूर्वादिचरित-कथन	११३-११८
„ अष्टत्रिंशत्तम	सुतोदय तथा इसके लिए विहित पूजादि कर्मविधान उपसंहार तथा ग्रन्थ समाप्ति	११८-१२४

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की आधार भूमि पुरुषार्थचतुष्ट्य (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) होने से सभी मानवीय अपेक्षाएँ इन्हीं चार पुरुषार्थों में अन्तर्निहित दिखलाई देती है। इसी प्रकार मानवीय कलेवर में भी शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा नामक चार अंग हैं जो अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थों की अपेक्षा की पूर्ति प्रदान (आदि) कार्य सम्पन्न करते हैं। इनमें शरीर के पोषण तथा संवर्धन की पूर्ति 'अर्थ' नामक पुरुषार्थ से, धर्म की पूर्ति 'बुद्धि' तथा आत्मा के द्वारा, मन की तुष्टि 'काम' नामक पुरुषार्थ से तथा आत्मा के द्वारा परमशान्तिरूप 'मोक्ष' पुरुषार्थ से पूर्ति होती है। ये आवश्यकता भी है तथा मानव के लिए अपरिहार्य भी है। इसका कारण यह है कि बिना अर्थ के भोजन-वस्त्रादि के न मिलने से जैसे शरीर वृथा तथा निष्क्रिय हो जाता है, वैसे ही बिना काम की पूर्ति के मन कुण्ठित एवं निष्क्रिय या निकम्मा बन जाता है, तथा सत्य एवं न्याय से पूर्ण धर्म के विना बुद्धि भी भटकन में आ जाती है; और बिना मोक्ष के आत्मा भी अपवित्र तथा पतित होने की सम्भावना निर्मित कर लेती है।

इसी कारण बुद्धि से सम्बद्ध धर्म, शरीर से सम्बद्ध 'अर्थ', मन से सम्बद्ध 'काम' तथा आत्मा से सम्बद्ध 'मोक्ष' होकर जीवन की एषणा अर्थ में, स्त्री-पुत्रादि की एषणा 'काम' में ज्ञान, यश तथा न्याय की एषणा 'धर्म' में तथा परमशान्ति युक्त सुख परलोक की प्राप्ति की एषणा 'धर्म' में तथा परमशान्तियुक्त सुख तथा परलोक की प्राप्ति की एषणा 'मोक्ष' में आस्थित मांनी गयी है, क्योंकि जैसे भोजनादि के बिना शरीर की स्थिति एवं सत्ता नहीं रह सकती वैसे ही 'काम' के बिना शरीर की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती है और शरीर के विना मोक्षादि सभी पुरुषार्थों की भी प्राप्ति नहीं होने से 'काम' पदार्थ भी सृष्टि का अनिवार्य एवं आधारभूत अर्थ है, अतः यही पुरुषार्थ भी होता है। ये चारों पदार्थ पुरुष के लिए प्रसूत होकर कल्पना या व्यवस्था हेतु निर्धारित हैं। शेष इनसे भिन्न सम्पूर्ण प्राणिवर्ग केवल सृष्टि-प्रवाह से सम्बद्ध होकर प्रकृतिप्रेरित कामतत्त्व का ही अनुसरण करता है। इसी कारण संसार का कोई भी प्राणिवर्ग न तो रति आदि भावों से अपरिचित होता है तथा न इससे रहित होता है। इस प्रकार रतिभाव ही समस्त प्राणिवर्ग में क्षेत्र तथा स्वरूपगत न्यूनाधिक्य बनाकर व्यापक रूप में अवस्थित होकर संसार में विद्यमान है।

अतएव इसी जगत् में संसार शब्द को गृहस्थी के रूप में अर्थतः ले कर संसारी या गृहस्थ को संसारी पद से भी अभिहित करते रहे हैं। इसी संसारी या गृहस्थ की दाम्पत्यमयी स्थिति का स्मृति, पुराण, शास्त्र तथा साहित्य में वर्णन तथा विवरण रखा गया है। धर्मशास्त्र में स्वदार-रक्षण तथा पोषण का गृहस्थ के लिए आवश्यक विधान भी निहित है तथा पुत्र एवं पुत्री के पोषण, लालन तथा उन्हें शिक्षादि प्रदान के विधान एवं कर्तव्यों का भी विवरण रखा गया था। इसी कारण सृष्टि के आधारभूत तत्त्व में 'रति' भाव की मान्यता भी रखी गयी थी। साहित्यादि में प्रेमार्द मन की दशा में 'रति' की स्थिति की स्वीकृति के कारण इसे 'रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्' कहकर आचार्यों ने इसका स्वरूप निदर्शित किया। यही अधिक अवस्था एवं ज्ञानादि के रखने वाले गुरु एवं पूज्यजन में जन श्रद्धाप्रवण मन से रहे तो 'भक्ति' तथा न्यून-अवस्था वाले पुत्रादि के प्रति रहने पर वात्सल्य कहलाती है, किन्तु जब यह समान अवस्था वाले मित्रादि में रहती है तो व्यवहार में 'मैत्री' होती है। इस प्रकार विषय एवं आलम्बनगत भिन्नता के कारण बनने वाली स्थिति से इनके नाम भी पृथक्-पृथक् होकर प्रसिद्धि एवं स्थिति बनाते हैं। इनमें जो पुरुष एवं स्त्री आकर्षण के पारस्परिक भावों के कारण एक दूसरे के प्रति वासनागत उत्पत्ति हो जाए तो यही 'रति' हो जाती है जिसे साहित्य के आचार्यगण शृंगाररस का स्थायिभाव स्वीकारते हैं। शास्त्रकार शृंगाररस की आपादिका रति को कान्ता विषयिणी (दशा वाली) ही मान्य करते हैं। यही रति श्रृंगार रस का स्थायिभाव बनती है तथा यही दाम्पत्यभाव की आधार भूमि भी है। अलंकार शेखर के कर्ता ने इसी उपर्युक्त विचार को स्पष्ट करते हुए यही बात कही भी है। यथा—

'रतिर्भवति देवादौ मुनौ पुत्रे गुरौ नृपे।
श्रृंगारस्तु भवेत् सैव या कान्ता-विषया रतिः ॥'

(अ. शे. २० .१४)

इसीलिए शौर्य, सौन्दर्य, वीरता, दया-दाक्षिण्य, कलागत लालित्यबोधादि गुण इसके आपादक भी हैं, तथा संवर्द्धक भी हैं। इसी के साथ जो रति विघातक हैं उनसे इसमें बाधाएँ तथा दोष उत्पन्न होकर आ जाते हैं। अतः प्रीतिवर्धक उपायों एवं इंगितादि के परिज्ञान से इनमें आने वाले दोषों तथा बाधाओं को दूर कर प्रीतिवर्धक उपायों, शारीरिक व्यापारों से दाम्पत्य जीवन को सुखी एवं सार्थक रखना चाहिए। क्योंकि आचार्य भरतमुनि ने कहा है कि "सभी को सुख प्राप्त करने की अभिलाषा प्रबल रहती है तथा इसका मूल स्त्रीजन है। अतः संसारचक्र के निरन्तर क्रियाशील रखने के क्रम में शास्त्र की स्थिति रहने तथा इसका ज्ञान रखने से स्वदाररक्षण तथा पुत्रादि की उपलब्धि होकर संसार भी चलता रहता है। अतः इस दाम्पत्य के आधारपीठ कामभाव की लब्धिरूप स्थिति प्राप्त करने के

उद्देश्य से इसका नियामक (विधायक) शास्त्र का निर्माण एवं प्रचलन होना आवश्यक हो गया था, तथा वह भी अनिवार्य या आवश्यक था। इसका उपदेश सर्वप्रथम ब्रह्मदेव ने ही प्रवचन प्रक्रिया से प्रारम्भ किया था और यही नन्दी एवं महेश्वर देव के द्वारा संक्षिप्त एवं जनोपयोगी बनाया गया। जिसके मूल में सभी विधाओं के प्रवर्तक एवं ज्ञानदाता, उपदेशक एवं उद्भावनकर्ता के रूप में सर्वप्रथम परम-महेश्वर ने इस 'कामतन्त्र' की लोकहितार्थ रचना की थी तथा इसके अनेक कला एवं शास्त्रगत विभेदों से इसे सुव्यवस्थित किया, जिसकी चर्चा भरतमुनि ने अपने शास्त्रग्रन्थ में की है। इसी विवरण को बाद में और भी सुरम्य, सरल तथा सभी को बोधगम्य बनाने के लिए आचार्य ब्राभव्य ने इसी शास्त्र को प्रयोगों के आधार पर अधिकरण तथा अध्यायों में विभाजित कर इसमें निहित विषयों की कल्पना की। यही अतिआरम्भक काल से लेकर इस शास्त्र की रचना, परम्परा तथा इतिवृत्त की स्थिति रही। ब्रह्मदेव ने इस शास्त्र की सूत्रादिरूप में रचना नहीं की थी। वे इस विषय के प्रवचनकर्ता ही थे जिनके प्रवचन काल से इस शास्त्र का उद्भव माना जाता है।

आचार्य बाभ्रव्य ने इस शास्त्र का सात अधिकरणों में विभाजन कर उसे लोकोपयोगी रूप में प्रसिद्ध किया था, इन्हीं पर परवर्ती आचार्यों ने अलग-अलग स्वतन्त्र रचनाएँ निर्मित की। इसी क्रम में ब्राभव्य के विस्तीर्ण विषयों को समुचित अध्ययन एवं परिज्ञान के कार्य के लिए आचार्य वात्स्यायन ने शास्त्र के सभी पक्षों को लेकर उपयुक्त विषय के साथ व्यवस्थित रूप देकर 'कामसूत्र' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसके विषय में यह कहा जाता है कि इसमें शास्त्रगत सभी प्रयोजन का समावेश किया गया है।[१] इस शास्त्र का वर्तमान काल में यही ग्रन्थ आधारभूत आकार ग्रन्थ के रूप में आहत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हुआ। वात्स्यायन ने इस ग्रन्थ की अर्थशास्त्र की पद्धति का अनुसरण तथा अनुकरण रखते हुए रचना की थी अतः कौटिल्य अर्थशास्त्र के बाद ही इनका स्थितिकाल भी मान्य है। संशोधक विद्वान् इनका समय ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी के कुछ पूर्व में निर्धारित करते हैं, जो समय कालिदास का पूर्वभावी था।

इस प्रकार इस शास्त्र पर परवर्ती समय में प्रकरण ग्रन्थ की सरणि पर अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ निर्मित हुए। इनमे वात्स्यायन के साम्प्रयोगिक, पारदारिक, भार्याधिकारिक तथा औपनिर्षादक नामक चार अधिकरणों के आधार पर 'कोक्कोक पण्डित ने रतिरहस्य' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसी क्रम में साम्प्रयोगिक, पारदारिक तथा औपनिषदिक नामक अधिकरणों के आधार नागरकवृत्त को केन्द्रित कर महामति भिक्षु पद्मश्री ने 'नागरसर्वस्व' की रचना की तथा इसमें अनेक उपयोगी नवीन विषयों को समाविष्ट कर प्रस्तुत किया।

---

१. सर्वमर्थमत्वेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम्।

इसी क्रम में कामसूत्र के आधार पर अन्य ग्रन्थ भी निर्मित हुए जिनमें यशोधर पण्डित ने वात्स्यायन सूत्र पर एक विस्तीर्ण व्याख्या 'जय-मंगला' निर्मित की। यह बड़ी ही पूर्ण कामसूत्र की एकमात्र टीका है। कुछ विद्वान् इस टीका के प्रणेता आचार्य शंकर को बतलाते हैं। इस कामशास्त्र पर कुछ अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

कल्याणमल्ल कृत—'अनङ्गरङ्ग', जयदेव कृत रतिमञ्जरी, श्रीशिवप्राक्त—रतिशास्त्र, हरिहर कृत—श्रृंगार-दीपिका जिसका अन्य नाम रतिहरस्य भी है, नागार्जुन प्रणीत—रतिदीपिका।

इनमें पद्मश्री कृत—नागर-सर्वस्व पर नेपाल के महाराज जगज्योतिर्मल्ल ने एक लघुवृत्ति भी संस्कृत में लिखी थी जिसकी चर्चा आगे की जा रही है।

पद्मश्रीकृत नागर सर्वस्व

नागर-सर्वस्व कामशास्त्र पर रचित प्रकरण ग्रन्थ है जिसे नागरकवृत्त के प्रकाश में साम्प्रयोगिक, औपनिषदिक तथा पारदारिक जैसे कामसूत्र के अधिकरणों के आधार पर शास्त्र के कुछ चुने हुए सीमित विषयों के विवरण ही रखे गये हैं। इनमें प्रतिपद्य विषयों को ३८ परिच्छेदों[१] में विभक्त कर प्रस्तुत किया गया है तथा अन्य शेष विषयों को छोड़ दिया गया है। इनमें विषयों का विवरण संक्षेप में रखा गया है जिनमें रतिकर्म या प्रणय का विवेचन (विवरणादि) है। इसमें इसी दाम्पत्यभाव के फल को सुत प्राप्ति बतलाकर ग्रन्थ को पूर्ण किया गया। ये सभी विषय एक नागरक पुरुष के सेवन के उपयुक्त साध्य तथा साधन को ध्यान में रखकर रखे गए थे जो वात्स्यायनानुगत रूप में भी है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में शास्त्रगत विषयों को केवल सीमित बिन्दुओं पर केन्द्रित रखकर (इस ग्रन्थ की) रचना की गयी थी, यह स्पष्ट है। इस ग्रन्थ में यद्यपि पारम्परिक शास्त्र विवरणों को अपेक्षानुरूप प्रस्तुत किया गया है किन्तु इसमें कुछ शास्त्रादि में अचर्चित ऐसे विषयों का भी पल्लवन हुआ है जो ग्रन्थकार की मौलिक कल्पना है जो प्रतिभा तथा अनुभवाश्रित तथा निविष्ट भी है। इसी कारण ये थोड़े विलक्षण भी हैं और विचित्र भी किन्तु फिर भी ये विवरण अपना महत्त्व रखते हैं। ऐसे विवरणों में -स्त्रीजन द्वारा मान्य शास्त्रीय-संकेत, नाडी-संक्षोभण-विधान तथा प्रयोग, सशब्द-चुम्बन, जिह्वा प्रवेश कार्य, विधान तथा ऐसे ही अन्य कार्यों का निर्देश करना। स्त्रीजन के आकर्षण में रत्नादि अलंकरणों को धारण करने की आवश्यकता के रहने से उन रत्नों का विवरण तथा स्वरूप भी बतलाते हुए उनकी परीक्षा तथा उनके शुभाशुभ की भी चर्चा की गयी है। इसका सर्वाधिक चर्चित उपयोगी विवरण है—पुरुष तथा स्त्रियों के चेष्टादि कार्यों का सोदाहरण विवेचन जिनमें हाव-भाव

१. इन ३८ विषयों की सूची इसी ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका में देखना चाहिए।

हेला आदि की अतिशय सुन्दरता से प्रस्तुति रखी गयी है। जिनमें स्त्री-पुरुषों के नागरत्व का चातुर्य तथा शालीनता से प्रकट करना एक ऐसे साधन के रूप में रखा है जिससे वही रतिभाव का संवर्द्धन कर शृंगार की प्रबल भावना का संवर्द्धक हो जाए। इनमें पुरुष स्त्रियों के सहज या अयत्नज चेष्टादि अलंकारों को देखा जाए तो यह विवरण पद्मश्री के द्वारा ही सर्वप्रथम उद्‌भावित कर प्रस्तुत किया गया था जो इसकी ऐतिहासिक स्थिति का आधार हो गया तथा इसी विवरण ने आगे साहित्य तथा नाट्य के शास्त्रीय ग्रन्थों में सागरनन्दी के नाटक-लक्षण-रत्न-कोष में तथा आगे विश्वनाथ कविराज के साहित्यदर्पण ग्रन्थों में भी उपयुक्त स्थान प्राप्त कर साहित्य में इतिहासगत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। इनमें आने वाले उदाहरण भी थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ बाद में सभी ग्रन्थों में अनुसृत रहे हैं। इसी ग्रन्थ में कामभाव के प्रसंग में शरीर के विभिन्न अवयवों पर स्पर्शादि के बीज मन्त्रों या वर्णों का विधान भी प्रस्तुत किया गया है, जो विशिष्ट है तथा क्षोभण का कार्य करता है। इसमें स्त्रियों के जाति तथा प्रदेशगत स्वभावादि एवं इनकी रुचि का उल्लेख भी नवीन परिवेश के साथ प्रस्तुत किया गया है जो बड़े मौलिक हैं तथा ये सभी विवरण इस ग्रन्थ की उपयोगिता एवं गुणवत्ता को संवर्धित कर इसे महत्त्व प्रदान करते हैं। इस ग्रन्थ का रचयिता एक बौद्धभिक्षु है तथा उसके द्वारा ऐसे विवरण इस शास्त्र की महत्ता के साथ-साथ इसकी लोकोपयोगिता को एक साथ उजागर करते हैं, यह स्पष्ट हो जाता है। ये विवरण इस लेखक की इन सभी कारणों से वाङ्मय में प्रसिद्धि, गौरव तथा प्रतिष्ठा को उन्नति की स्थिति में पहुँचाती है, यह कहना निर्विवाद सत्य है।

ग्रन्थकार भिक्षु-पद्मश्री

नागर[१] सर्वस्व के रचनाकार भिक्षु पद्मश्री हैं जो बौद्ध धर्मावलम्बी तथा शास्त्रविद् भी थे। प्राकृत में प्रायः श्री शब्द का निवेश पर या बाद में रखा जाता है जैसे—मालतीमाधव में 'माहवसिरिणो' शब्द प्रयोग श्रीमाधव के लिए हुआ है किन्तु इसी पद्धति का संस्कृत भाषा में ऐसी ही स्थिति में प्रयोग मिलता है जो 'विद्धशालभञ्जिका में है। यथा—मातुलचन्द्रवर्मश्री, (विद्ध. शा. भ., अङ्क-४', ज्ञानश्री नाम विक्रमशिला विहार के बौद्ध विद्वान् का था। ऐसी ही स्थिति मञ्जुश्री शब्द की भी है जो महाबोधिसत्वविशेष का नाम है। कहने का आशय यह है कि महामति विद्वान् आचार्य पद्मश्री के बौद्धमत में प्रायः ऐसे नामों को बड़े आदर एवं प्रतिष्ठा वाले मानकर इनका प्रयोग किया जाता था, यह

---

१. नागर—शब्द भी एक पारिभाषिक शब्द है। इसका लक्षण भी मिलता है। यथा—अग्राम्यमण्डनः प्रायः शुचिश्च श्रीमांश्च गायनः। नर्मगोष्ठीप्रतिष्ठश्च षड्गुणो नागरो मतः॥ (इति)

स्पष्ट हो जाता है। इनके अन्य नामों में पद्मपण्डित, पद्मश्रीज्ञान तथा पद्मज्ञान नाम भी मिलते थे। कुछ विद्वान् इन्हें पद्मश्री शब्द में स्थित दीर्घ ईकारन्त स्थिति को मानकर इन्हें स्त्री या भिक्षुणी भी मानते हैं, किन्तु यह केवल कल्पनामात्र है, ये विद्वान् पुरुष तथा गम्भीर शास्त्रवेत्ता थे। इस ग्रन्थ की पुष्पिका के अनुसार वासुदेव नामक एक ब्राह्मण सुहृद के अनुरोध पर पद्मश्री ने इस कामशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ को पद्मश्री ने इस विद्या के तत्कालीन भाषा में लिखे कुछ ग्रन्थों के अतिरिक्त वात्स्यायन मुनि के आकर ग्रन्थ 'कामसूत्र' तथा पारम्परिक कामित या कामतन्त्र जैसे ग्रन्थों के साथ शाङ्करतन्त्र तथा नन्दी या नन्दिकेश्वरकृत नाट्यशास्त्र के समान ही अभिनयादिशास्त्र से हावभावादि विवरण लेकर प्रणय-विद्या के ग्रन्थों को भी अपना आधार बनाया था। यह बात नागरसर्वस्व में उद्धृत शाङ्करतन्त्र के महेश्वर के उद्धरण देने से प्रकट होता है। ये महेश्वर या शंकरदेव रतिशास्त्र के प्रवर्तक नहीं थे तथा ये कदाचित् पद्मश्री के पूर्वभावी कोई प्राचीन ग्रन्थकार थे। कुछ विद्वान् इन्हें 'स्मरदीपिका' ग्रन्थ के लेखक रुद्र से अभिन्न मानते हैं। महेश्वर का मत पद्मश्री ने इस ग्रन्थ में चार स्थलों पर उद्धृत किया है।

पद्मश्री का स्थितिकाल इनके पुष्पिका में उल्लेख नहीं करने के कारण निश्चित नहीं है। इनके ग्रन्थ के अन्तःसाक्ष्य रूप में दामोदर गुप्त के 'कुट्टनीमत' का उल्लेख मिलने से ये दामोदर गुप्त के उत्तरभावी समय में विद्यमान थे यह निश्चित है तथा इनके स्थिति काल की पूर्वसीमा भी यही निश्चित होती है। श्री दामोदर गुप्त का स्थितिकाल विक्रम संवत्सर ८५० या ईसवी वर्ष ७९३ या आठवीं शती था। अतः इसके बाद नवमी शती के अन्त या दशमी शती के आरम्भ में पद्मश्री का स्थितिकाल रखा जा सकता है। इस समय अनेक बौद्ध विद्वान् नाट्य-विद्या, काव्यशास्त्र तथा रति या प्रणयशास्त्र पर ग्रन्थ रचना करने वाले मिलते हैं। इनमें आचार्य राहुल तथा पद्मश्री हैं जिनमें राहुल ने नाट्य-विद्या तथा पद्मश्री ने कामशास्त्र एवं नाट्य एवं चेष्टालंकारों के विषय पर रचना की तथा उस समय हावभावादि लक्षणों पर उत्तम-उत्तम विवरण भी उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किए। यही विवरण वाद में नाटकलक्षणरत्नकोष—में सागरनन्दी ने नागरसर्वस्व से लेकर प्रस्तुत किया। सागरनन्दी का यह कार्य पद्मश्री के ग्रन्थ के बाद ही हुआ था। अतः सागरनन्दी के पूर्ववर्ती पद्मश्री थे। इस प्रकार सागरनन्दी का स्थितिकाल जहाँ एकादशवीं शती का अन्तिम भाग स्थिर होता है तो इसके पूर्वभावी भिक्षु पद्मश्री का स्थितिकाल दसवीं शती का आरम्भ या नवीं शती का अन्तिम भाग स्थिर होना युक्तिसंगत होने से प्रायःभिक्षु पद्मश्री का समय दसवीं शती मानना साधार एवं तर्कसंगत है। यद्यपि पद्मश्री के नागरसर्वस्व का एक बड़ा भाग कवि शाङ्‍र्गधर ने भी अपने शाङ्‍र्गधरपद्धति में प्रसंगवश उद्धृत किया है जिनका स्थिति काल तेरहवीं शती (१२३७) था। जिससे भी पूर्वभावी स्थिति सागरनन्दी

की माने तो भी पद्मश्री का स्थितिकाल दसवीं शती ही पुष्ट होता है। अतः पद्मश्री का स्थितिकाल नवीं शती के अन्तिम दशक से दसवीं शती का पूर्वार्ध है, यही निश्चय होता है।

नागरसर्वस्व में कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग है जो अधिक प्रसिद्ध नहीं थे या शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द थे। जैसे—अभिरूढ़ा, योग्या, खग, त्र्यंस्त्र, मयूरक, चुम्ब आदि शब्द। इस ग्रन्थ की रचना पद्मश्री ने बौद्धभिक्षु होकर भी की थी यह कोई विचित्र या आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि शास्त्रोपदेश का कार्य जब ब्रह्मा आदि देवगण ने किया हो तो फिर बौद्ध मनीषी द्वारा यह किया जाना केवल लोक-हिताय ही है यही समझना उपयुक्त है, तथा यही इस ग्रन्थ की सर्वजनोपयोगिता भी है। इसके अतिरिक्त प्रकृत ग्रन्थ शास्त्र के अज्ञात पक्षों को भी उद्घाटित कर एक विद्या के शिष्योपदेश के औचित्य तथा स्वरूप को भी प्रकट करता है, जो प्रकृत शास्त्र के प्रति भिक्षु पद्मश्री का मौलिक योगदान भी है तथा शास्त्र का रक्षण एवं संवर्धन भी। ऐसी शास्त्रीय कार्य की धारा परिव्राजकों, भिक्षुओं तथा श्रमणों के द्वारा शास्त्र की प्रवृत्ति तथा गम्भीर व्याख्या के लिए अनुसृत रही है यह सभी सचेता समीक्षक मानते हैं तथा यही शास्त्रों के विवरण के साथ विषय को प्रस्तुत करने की परिपाटी भी प्राचीनकाल से चली आ रही है।

महाराज जगज्ज्योतिर्मल्ल—टीकाकार

पद्मश्री के नागरसर्वस्व के टीकाकार जगज्ज्योतिर्मल है जिसने इस पर एक संक्षिप्त तथा सुबोध व्याख्या लिखी थी। ये जगज्ज्योतिर्मल्ल नेपाल के शासक एवं विद्वान् तथा शास्त्रों के विज्ञाता रहे हैं। ये नेपाल के भक्तपुर (वर्तमान भाटगाँव) में स्थित शासक थे, यह ऐतिहासिक रूप में ज्ञात होता है। ये सूर्यवंशीय (क्षत्रिय) राजा थे, क्योंकि नेपाल पवित्र रघुवंशीय भूपालों के वंशधरों का राज्य रहा है। इनके पिता राजा त्रैलोक्यमल्ल या त्रिभुवनमल्ल थे जिनका शासनकाल वि. सं. १६७३-१६८९ (ई. सन्. १६१७ से १६३३) तक था। ये राजा भगवान् महेश्वर शिव एवं भगवती पार्वती के अनन्य उपासक तथा अनन्य भक्त थे तथा शास्त्र, कला-विद्या के न केवल स्वयं विज्ञाता थे किन्तु उनके संरक्षण में भी उद्यत रहते थे। इसी कारण इनकी राजसभा में अनेक विशेषज्ञ विद्वान् भी आश्रित थे। इन्होंने स्वयं भी इसी वातावरण के कारण अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। जिनका विवरण इस प्रकार है—

१. संगीतसार-संग्रह—यह ग्रन्थ संगीतशास्त्र पर है। इसकी रचना वि. सं. १६८२ या ई. १६२५ में हुई थी। इस ग्रन्थ का आकार १५४० श्लोक का है। इस ग्रन्थ में प्राचीन आचार्यों में भरतमुनि, व्यासदेव, विप्रदास आदि का नाम तथा मत आदि उद्धृत मिलता है।

२. संगीत-भास्कर—यह अभिलाष कृत संगीतचन्द्र की टीका के रूप में निर्मित है। यह संगीतचन्द्र नामक ग्रन्थ महाराज ने दक्षिण प्रदेश से मूलरूप में बुलवाया था तथा अपने आश्रित वंशमणि पण्डित के परामर्श एवं सहयोग से इस टीका की रचना की थी। वंशमणि पण्डित मिथिलावासी भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे तथा जिनके पिता का नाम पण्डित रामचन्द्र था। ये बड़े विद्वान् तथा शास्त्रवेत्ता थे। इनने 'गीत-दिगम्बर' नामक एक विशिष्ट प्रहसन की रचना की थी जो एक गीतिनाट्य के रूप में चार अंकों में निर्मित क्रान्तिकारी रचना थी। इनमें चतुरक या शतरंज के खेल पर 'चतुरंग-तरंगिणी' नामक ग्रन्थ भी लिखा था। इन्हीं विश्रुत विद्वान् के वंशधारी होने से वंशमणि नेपाल राज-सभा में पण्डित होकर स्थान प्राप्त कर सके थे।

३. श्लोकसारसंग्रह—(रचनाकाल वर्ष संवत् १६८२ या ई. वर्ष १६२५) यह एक सुभाषित पद्यों का संग्रह है, जिसमें तैंतीस प्रसिद्ध सुभाषितकारों की रचना समाविष्ट कर ग्रन्थ रचना की गई है।

४. गीतपंचाशिका—यह एक गीतों का संकलन संग्रहयुक्त ग्रन्थ था, जो गायक तथा साहित्य के अनुशीलनकर्ता के लिए निर्मित किया गया था।

५. स्वरोदय-दीपिका—(रचनाकाल वर्ष वि. सं. १६८० या सन् १७२३) यह स्वरोदयशास्त्र के ग्रन्थ की टीकारूप में है जिसका ग्रन्थ प्रमाण विस्तीर्ण तथा ग्रन्थ ४७९८ का है।

६. नागरसर्वस्व-टीका—नागरसर्वस्व पर संक्षिप्त संस्कृत टीका। यह पद्मश्री कृत नागरसर्वस्व पर सरल टीका है जो सामान्यतः ग्रन्थ का शाब्दिक आशय दिखलाती है। इस ग्रन्थ की केवल यही एकमात्र ज्ञात तथा प्राप्य टीका है तथा पूर्व में भारत के बम्बई स्थित गुजराती प्रेस से प्रकाशित थी।

इनके अतिरिक्त जगज्ज्योतिर्मल देव ने दो नाटक भी लिखे थे।

यथा—

१. कुञ्जबिहारी—नाटक। (कृष्ण लीला पर आधारित नाटक)

२. कुवलयाश्व—नाटक। (कुवलयाश्व के पौराणिक आख्यान पर आधारित नाटक)

जगज्ज्योतिर्मल्ल कृत नागरसर्वस्व टीका—यह टीका सत्रहवीं शती में इस ग्रन्थ पर निर्मित हुई। इससे पूर्व इस ग्रन्थ पर कोई टीका नहीं थी। यही लब्ध एकमात्र टीका है। इसके एकमात्र प्राचीन टीका रहने से भी इसकी प्रतिष्ठा है। राजा ज्योतिर्मल्ल देव के कला-संबीत तथा प्राचीन कामशास्त्रगत अभिज्ञता एवं रुचि का भी इससे संकेत मिलता

है। इनके द्वारा इस शास्त्र के विवरणों को प्रस्तुत करने से इसका शास्त्राभ्यास का भी परिज्ञान प्रतीत होता है।

प्रकृत ग्रन्थ की केवल दो हस्तलिखित मूलग्रन्थ की मातृकाएँ भी नेपाल से ही प्राप्त हुई थी तथा टीका की प्रति भी नेपाल में थी जिनके आधार पर बम्बई संस्करण का सम्पादन होकर प्रकाशन सम्भव हुआ था। इस प्रकृत संस्करण को भी बम्बई संस्करण के आधार पर मूल एवं टीका की पाठगत स्थिति को ठीक कर प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्वीक्षण से यह भी प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ के एक पाठ में ३८ परिच्छेद तथा दूसरे क्रम में १८ परिच्छेद विद्यमान हैं। नेपाल राजा ने १८ परिच्छेद मानकर इस पर टीका की थी। इस टीका को तथैव रखकर ३८ परिच्छेद की संख्या लगाते हुए शायद ३८ परिच्छेद रखे गए थे। इन दोनों का समायोजन बम्बई संस्करण में जिस तरह से दक्षता के साथ रखकर प्रस्तुत किया गया था वही क्रम उपयुक्त मानकर हमने भी प्रकृत संस्करण में प्राचीन व्याख्या को मूल के साथ संयुक्त रखते हुए इसकी हिन्दी भाषा में भी व्याख्या की है जिसे देखकर सुधीजन तथा संशोधक विद्वान् सन्तुष्ट होंगे यही आशा है।

अनाविला—हिन्दी व्याख्या—नागरसर्वस्व के बम्बई संस्करण के वर्षों तक दुर्लभ रहने तथा अन्य उपयुक्त व्याख्या के न होने से सुधीजन को बड़ी असुविधा का अनुभव हो रहा था। मैंने जब अपने नाटक-लक्षणरत्नकोश के हिन्दी व्याख्या के निर्माण के समय भी इस ग्रन्थ को प्राप्त कर सन्दर्भ के लिए उपयोग किया था, तभी इस ग्रन्थ को भी पुनः सम्पादित कर सुलभ करवाने की भावना मन में उठी थी। सागरनन्दी के नाटक-लक्षणरत्नकोश के प्रकाशन के कई वर्षों के बाद भी इस ग्रन्थ के भारत के किसी भी कोने से चर्चा एवं प्रकाशन की स्थिति को न पाकर अनुशीलन एवं अनुसंधानकर्ताओं को भी बड़ी असुविधा हो रही थी तथा ग्रन्थ भी दुर्लभ रहने से सुलभ नहीं था। यह देखकर इसको सम्पादित कर हिन्दी में भी इस ग्रन्थ पर ऐसी व्याख्या—जिससे इसमें स्थित शास्त्रतत्त्वों का भी परिज्ञान हो सके मैंने इन उपर्युक्त अपेक्षाओं पर ध्यान देकर एक हिन्दी व्याख्या तैयार की तथा आवश्यक टिप्पणी भी संक्षेप में ही इसके साथ संयुक्त कर दी और एक उपयोगी संस्करण अनाविला व्याख्या के साथ निर्मित कर प्रस्तुत किया है।

आभार

इस पद्मश्री प्रणीत नागरसर्वस्व के संस्करण को बनाने तथा इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए मुझे अनेक सुधीजन ने प्रेरित किया जिनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता सामान्य रूप से तथा विशेषतः साहित्य एवं कलाविद्या के अलभ्य ग्रन्थों के उद्धार में प्रेरणा एवं सन्नद्धता को सतत स्मरण करवाने के कारण डॉ. सुषमा कुलश्रेष्ठ, प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, दौलतराम महाविद्यालय, देहली के प्रति विशेषतः आभारी हूँ जिसने इस ग्रन्थ के निर्माण

एवं प्रकाशन के स्तर पर भी मुझे प्रोत्साहित किया है इस कार्य में योगदान देकर प्रकाशन करने के लिए मैं देहली के लब्ध कीर्ति प्रकाशक ईस्टर्न बुक लिंकर्स के व्यवस्थापक श्री श्यामलाल जी मल्होत्रा का भी हृदय से कृतज्ञ हूँ।

इस ग्रन्थ के लेखन काल में कालिदास अकादमी के अनुसन्धान विभाग के परिवार में डॉ. जगदीश शर्मा टंक मुद्रक श्री आर. जे. पानडीवाल तथा कार्यालय के मुख्य प्रशासकीय अधिकारी श्री पी. एस. यादव के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अकादमी के सुधी संचालक श्री आचार्य श्रीनिवास रथ के उदार सहयोग सान्निध्ययुक्त प्रेरणा के रहने से उनके प्रति अनेक साधुवाद एवं कृतज्ञता प्रस्तुत करते हुए आराध्य प्रभु महामहेश्वर महाकालदेव के चरणों में सादर प्रणति अर्पित करता हूं जो समग्र भूमण्डल के अधिपति तथा समग्र शास्त्र, कला तथा विद्याओं के अधिष्ठाता हैं।

निवेदक

कालिदास अकादमी, उज्जैन — ग्रन्थ सम्पादक तथा हिन्दी व्याख्याकार

बसन्तपञ्चमी—२०५० — आचार्य बाबूलाल शुक्ल, शास्त्री

॥ श्रीः ॥

महामतिपद्मश्री-प्रणीतम्

नागरसर्वस्वम्

जगज्ज्योतिर्मल्लप्रणीतया संस्कृतव्याख्यया अनाविलाख्य-
हिन्दीव्याख्यया चानुमतम् ।

मुहूर्तमपि यं स्मरन्नभिमतां मनोहारिणीं
लभेत मदविह्वलां झटिति कामिनीं कामुकः ।
तमुल्लसितडम्बरं सुरुचिराङ्गरागारुणं
नमामि सुमनाशरं सततमार्यमञ्जुश्रियम् ॥ १ ॥

॥ ऊँ नमः । श्रीभवानीशङ्कराभ्यां नमः ॥

श्रीजगज्ज्योतिर्मल्लेन भवानीचरणाम्बुजम् ।

नत्वा नागरसर्वस्वटीकेयं परितन्यते ॥१ ॥

आदौ ग्रन्थकारः कामशास्त्रत्वात् कामदेवं नमस्करोति । अहं ग्रन्थकारः, तत् तस्मात्, इह ग्रन्थे, तं सुमनःशरं कामं, सततं निरन्तरं, नमामि नमस्करोमि । सुमनः पुष्पं तदेव शरो यस्य सः तं, तं कम्? कामुकः यं कामं मुहूर्तमपि स्मरन्, अभिमतां स्वमनोवाञ्छितां, कामिनीं लभेत्; कथंभूतां कामिनीम्? मनोहारिणीं अर्थात् आत्मनः मनोहारिणीम्; पुनः कथंभूताम्? मदविह्वलां मदेन विह्वलां सगर्वितामित्यर्थः । तं किं विशिष्टम्? उल्लसितडम्बरं उल्लसितो डम्बरो गर्वो यस्य सः तम्; पुनः कथंभूतम्? सुरुचिराङ्गरागारुणं सुरुचिरं च यत् अङ्गं चेति तत् सुरुचिराङ्गं; सुरुचिराङ्गे रागेण अनुलेपेन अरुणो यः तम्; पुनः कथंभूतम्? आर्यमञ्जुश्रियं—आर्या वरिष्ठा, मञ्जु कोमला, श्रीः शोभा, यस्य सः तम् ॥१ ॥

मैं उन पुष्प के शर तथा धनुष को धारण करने वाले तथा अतिशय सुन्दर[१] शोभायुक्त कामदेव की वन्दना करता हूं जिसका कामुकजन एक क्षण भी स्मरण करे तो वह अपनी अभीष्ट तथा आत्मा को (मन को) प्रसन्न एवं आकृष्ट करने वाली गर्व तथा मद से भरी हुई कामिनी प्राप्त कर लेता है। जो कामदेव स्वयं भी गर्व से भरा हुआ तथा रुचिर अंगराग धारण करने से अरुणिमापूर्ण शरीर वाला हो रहा है ॥१॥

केचिद् भाषान्तरकृततया कामशास्त्रप्रबन्धा
दुर्विज्ञेया, गुरुतरतया, केचिदल्पार्थकाश्च।
तत्पद्मश्रीविरचितमिदं सर्वसारं सुबोधं
शास्त्रं शीघ्रं श्रृणुत सुधियोऽभीष्टधर्मार्थकामाः ॥२॥

केचित् कामशास्त्रप्रबन्धाः भाषान्तरकृततया दुर्विज्ञेयाः भाषाभेदकृतत्वात् दुःखेन बोधसाध्याः। केचित् अल्पार्थकाश्च दुर्विज्ञेयाः ज्ञातुं अशक्याः। हे सुधियः सुशोभिना धीः येषां ते सुधियः पण्डिताः, तत् तस्मात् कारणात्, पद्मश्रीनामपण्डितविरचितं इदं सर्वसारं शास्त्रं अभीष्टसर्वार्थकामाः स्ववाञ्छितसर्वकार्याणि(र्याः ?) शीघ्रं श्रृणुत ॥२॥

इस कामशास्त्र के कुछ ग्रन्थ विभिन्न भाषाओं में रहने से वे (इसी कारण) जानने में दुर्बोध्य हैं तथा कुछ कम या थोड़े से अर्थोको बतलाने वाले रहने के कारण (भी) वैसे ही दुर्बोध हैं। अतएव जिससे सभी कामार्थ अभीष्ट रूप से पूर्णरूप में एवं ज्ञात हो सके ऐसे पद्मश्री पण्डित के द्वारा रचित सारभूत शास्त्रतत्त्व से मण्डित इस नागरसर्वस्व नामक ग्रन्थ का ही जिज्ञासु श्रोतृजन को देख-सुन कर अनुशीलन करना चाहिये ॥२॥

नानाविचित्रैः सुरतोपचारैः
क्रीडासुखं जन्मफलं नराणाम्।
किं सौरभेयीशतमध्यवर्ती
वृषोऽपि संभोगसुखं न भुङ्क्ते ॥३॥

---

१. आयेमज्जुश्रियम्-मज्जुश्री-बोधिसत्वों की श्रेणी में प्रसिद्ध अन्यतम् या जिसकी उत्तम शोभा सुन्दरता से पूर्ण है। यहां ग्रन्थकार पद्मश्री के बौद्धधर्मोनुगामी होने से आरम्भ में मत्तुश्री का स्मरण बुद्ध के प्रति श्रद्धापूर्ण वंदना को भी संकेतित करता है। पद्मश्री के विषय में प्रस्तावना भी दृष्टव्य।

नराणां जन्म। नानाविचित्रैः नानाप्रकारैः, सुरतोपचारैः सुरतप्रबन्धैः। क्रीडासुखं केलीसुखं, फलं जन्मसार्थकं इत्यर्थः। एवं चेत्, न। तदा, सौरमेयी गौः, शतमध्यवर्ती, वृषोऽपि, वृषभोऽपि संभोगसुखं, किं न भुङ्क्ते-न रसाभिनयज्ञानेन जानाति ॥३॥

मानवों का जन्म अनेक प्रकारों वाले सुरतकर्म एवं इसके बन्धों के ज्ञान एवं प्रयोग से विहार कर आनन्द की प्राप्ति होना पूर्वजन्म की सुकर्मप्राप्ति या पुण्य का कारण माना जाता है। क्योंकि अनेक गौओं के बीच स्थित वृष भी तो सांसारिक सुरतफल तथा आनन्द की प्राप्ति साधारण भाव से यों ही प्राप्त करता ही है किन्तु वह न तो रस और न ही प्रयोगादि शास्त्रज्ञान से पूर्ण होता है॥३॥[1]

हित्वाऽऽत्मकामं शमयेद्वशी यो
नितम्बिनीनां मदनज्वरार्तिम्।
कृपान्वितो मन्मथशास्त्रवेदी
समाप्नुयात् स्वर्गसुखं स धीरः ॥४॥

यः नरः आत्मकामं हित्वा, नितम्बिनीनां स्त्रीणां, मदनज्वरार्तिं कामज्वरपीडां, शमयेत्, सः पुरुषः, स्वर्गसुखं समाप्नुयात्। कथंभूतः पुरुषः? वशी जितेन्द्रियः, पुनः कथंभूतः? कृपान्वितः कृपायुक्तः, पुनः कथंभूतम्? मन्मथशास्त्रवेदी कामशास्त्राभिज्ञः, अत एव धीरः पण्डितः॥ तथा चोक्तं महीभारते—"कामार्तीं स्वयमायान्तीं यो न भुङ्क्ते नितम्बीनीम्। सोऽवश्यं नरकं याति तन्निश्वासहतो नरः॥"

जो विवेकी पुरुष अपने कामगत स्वार्थ को छोड़ कर युवती स्त्रीजन की अपेक्षित मदनज्वर की पीड़ा का कृपा भाव से (कुशलता से) उपशमन करे तो ऐसे कामशास्त्र-वेत्ता पुरुष को अपने धीरतायुक्त प्रशस्त कार्य के कारण स्वर्ग की तथा सुख की भी प्राप्ति होती है।[2]

---

१. आशय यह है कि केवल सम्भोग से प्राप्त सुख तो पशु आदि भी प्राप्त कर लेते हैं किन्तु मनुष्य के जन्म का फल कामशास्त्रादि के ज्ञान से अनुगत विहारादि से विभिन्न तथा विचित्र क्रियाओं के साथ सांसारिक आनन्द की अतिशय प्राप्ति होना है।

२. क्योंकि युवती स्त्री पर-पुरुष द्वारा कामशास्त्रानुसार सम्भोग प्रदान करने पर उसे हृदय के साथ शरीर को सुखमय उपभोग के लिये तथा सांसारिकव्यवहार-हेतु धन भी प्रदान करती है।

तथा चाह महेश्वरः—

"कामं त्यक्त्वाऽऽत्मनः कामी कामव्याधिनिपीडिताम्।
चिकित्सयति यो नित्यं पदं प्राप्नोति कामिकम्॥"५॥

यः नरः, आत्मानः कामं त्यक्त्वा, कामज्वरनिपीडितां स्त्रियं, नित्यं चिकित्सयति, स पुरुषः, कामिकं इच्छाविषयि(य)कं, पदं स्थानं प्राप्नोति॥५॥

जैसा कि महेश्वर (आचार्य) ने भी बतलाया है कि—जो धीर पुरुष अपने व्यक्तिगत अपेक्षित काम का परित्याग कर मदनगत पीड़ा से पीड़ित किसी तरुणी स्त्री की उचित उपचारादि कार्यों से चिकित्सा कर उसे शान्ति प्रदान करता है, उसे अभीष्ट रतिसुख की प्राप्ति होती है॥५॥[१]

ज्ञानेऽस्य शास्त्रस्य धनाशयानां
तिष्ठन्तु तावद्धनधान्यलाभाः।
सुतार्थिनां नापि सुता दुरापाः
श्रद्धावतां साधयतां प्रयत्नात्॥६॥

अस्य कामशास्त्रस्य ज्ञाने, धनाशयानां धनलुब्धानां, धनधान्यलाभाः, तिष्ठन्तु भवन्तु,—यतः सर्वे धातवः भावार्थाः प्राप्तकार्थश्च। प्रयत्नात् यत्नपूर्वकं, साध्यतां उद्योगं कुर्वतां, श्रद्धावतां श्रद्धायुक्तानां, सुतार्थिनां पुत्रार्थिनां, अपि, सुताः पुत्राः, न दुरापाः किं तु सुलभा एव, अस्य शास्त्रस्य ज्ञानात् इति भावार्थः॥६॥

धन प्राप्ति की इच्छा रखने वाले इस कामशास्त्र के परिविष्टित ज्ञान के द्वारा यदि धनोपार्जन चाहें तो ऐसी बातों को रहने भी दिया जाए कि इससे धन तथा धान्यादि की लाभ तथा प्राप्तियां होती हैं। इसके ज्ञान से पुत्र की इच्छा क़रने वालों को पुत्र प्राप्ति भी दुर्लभ नहीं रहती क्योंकि को शास्त्रवेत्ता प्रयत्नपूर्वक श्रद्धा से इस शास्त्र का अनुसरण एवं प्रयोग रखेंगे तो उन्हें इन सभी पदार्थों की प्राप्ति तथा लाभ होंगे यह निःसंदेह समझना चाहिये॥६॥

---

१. इसका कारण यह है कि परस्त्री यौवनावस्था में समुचित पुरुष या पति के न मिलने पर मानसिक विकृति के कारण ही वह उन्माद तथा व्याधि को प्राप्त कर लेती है, अतः उसी के लाभार्थ उसकी तृप्ति को उपभोग द्वारा पूर्ण करना भी एक उपकार कार्य हो है तथा धर्मापादक हो जाता है। इसी तथ्य को महेश्वर के शास्त्रवचन से भी यहां समर्थित किया गया है जिससे इष्ट धर्म की प्राप्ति भी संभव है।

यथोपदशेन वराङ्गदेशे

बीजस्य विन्यासवशेन नारी।

सङ्कल्पजव्याधिनिपीडिताङ्गी

समर्पयेत् सद्रविणं शरीरम्॥ ७॥

सङ्कल्पजः कामः, तद्व्याधिना निपीडिताङ्गी निपीडितशरीरा नारी, वराङ्गदेशे गुह्यस्थाने, यथोपदेशेन उपदेशक्रमेण, .बीजस्य विन्यासवशेन शुक्रसंस्थापनेन, सद्रविणं सधनं, शरीरं पुत्रं, समर्पयत् अर्थात् स्वस्वामिने स्वपुरुषाय॥ ७॥

कामगत पीड़ा से युक्त कोई भी सुन्दरी नारी अपने गुह्य स्थान में रतिकर्मवश विधिवत् बीज की (वीर्य की) स्थित रख कर ऐसे पुत्ररत्न को अपने भर्ता को प्रस्तुत करती है जो धनादि से भी अधिक पूर्णतावाला होता है अथवा धन और पुत्र को अपने स्वपुरुष को प्रदान करती है॥ ७॥[१]

जगत्रिवर्गप्रभवं यदेतत्,

कृतं ततः सत्वहितैर्महद्भिः।

बुधैर्विधेया न कुदृष्टिरस्मिन्,

गुणांशहृद्या वचनेन सन्तः॥८॥

सत्त्वहितैः प्राणिहितैः, महद्भिः, एतत् जगत् त्रिवर्गप्रभवं कृतम्। अस्मिन् शास्त्रे, बुधैः पण्डितैः कुदृष्टिः न विधेया, यतः सन्तः वचनेन गुणांशहृद्याः गुणांशग्राहिणो भवन्ति॥८॥

प्राणियों का हित करने के लिये ही ईश्वरादि के द्वारा संसार को त्रिवर्ग या त्रिगुणों से युक्त निर्माण किया गया है, जिससे प्राणि इन धर्म एवं कामादि का सेवन प्रकृति के अनुसार प्रशस्त विधि से करते रहे। इसलिये सुधीजन इस कामशास्त्र को हीनभाव से न देखें क्योंकि मतिमान् सज्जन सदैव शास्त्रादि को गुणग्राहिता के आधार पर ही ग्रहण करते हैं[२]॥८॥

---

१. क्योंकि युवती स्त्री पर-पुरुष द्वारा कामशास्त्रानुसार सम्भोग प्रदान करने पर उसे हृदय के साथ शरीर को उपभोग के लिये तथा सांसारिक व्यवहार हेतु धन भी प्रदान करती है।

२. कामशास्त्र भी धर्मादि पुरुषार्थ-त्रिवर्ग का उपकारक है और इसी कारण इसे भी महान् तत्ववेत्ता महर्षिजन ने ही निर्मित किया है वह भी उपकार के कारण क्योंकि यह भी त्रिवर्ग प्राप्ति में साधनभूत है। जहां गुण का थोड़ा भी अंश उपादेय हो तो भी विद्वज्जन इसी कारण वहां भी आकृष्ट होकर उससे लाभ प्राप्त कर लेते हैं।

तथाच महेश्वरः—

सत्त्वोपकारपरमा हि त्रिवर्गसाराः,
सत्त्वोपकाररचिता विदुषां विभूतिः।
सत्त्वोत्थमेव विदधीत यदाश्रयीत
वैशेषिकं यदिह तेन कृतं सुशास्त्रम्॥ ९॥

त्रिवर्गसाराः धर्मार्थकामाः, सत्त्वोपकारपरमाः प्राणिनां उपकाररताः। विदुषः पण्डिताः, सततं सत्त्वोपकारं प्राणिहितं, बिभर्ति कुर्वन्ति। सत्त्वोत्थं प्राणिजनितं, यत् विदधीत आश्रयीत वा, तेन पुरुषेण, सुशास्त्रं वैशेषिकं कृतं मोक्षपदं प्राप्तं, यतः वैशेषिकशास्त्रे मोक्षनिर्णयकथनम् अस्तीति ॥ ९॥

जैसा कि श्री आचार्य देव महेश्वर ने भी बतलाया है—

क्योंकि जो पुरुषार्थभूत त्रिवर्ग धर्म, अर्थ तथा काम हैं ये प्राणियों के उपकारार्थ ही प्रवृत्त हैं। अतएव ये सुधियों के सात्विक लाभों के लिये रहने से उनके लिये एक मण्डन रूप स्थिति को निर्मित किये हुए हैं, अतएव सत्त्व से जन्य ही इस पुरुषार्थ का आश्रय लेना चाहिये जो क्रियादि अनुष्ठानों से सम्पन्न होता हो। इसी कारण इस विशेषभूत शास्त्र[1] का भी सेवन कर मोक्षपद की विशेष रूप से प्राप्ति करराने वाला यह विधानभूत उपकारक शास्त्र के रूप में भी समझा जाता है॥९॥

सत्त्वोपकारपरमा हि ममाग्रपूजा,
सत्त्वापकारपरमश्च पराभवः स्यात्।
दुःखं सुखं च मम सत्त्वसमानमिष्टं,
सत्त्वेषु यः प्रहरते स कथं मदीयः॥१०॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे त्रिवर्गनिर्णयो नाम प्रथमः परिच्छेदः॥]

हि यस्मात् सत्त्वोपकारपरमा प्राणिनां उपकारपरा, मम अग्रपूजा श्रेष्ठपूजा इत्यर्थः। सत्त्वापकारपरमश्च प्राणिनां अपकारपरः, मम पराभवः स्यात्। दुःखं सुखं च मम सत्त्वसमाननिष्ठं सर्वप्राणिषु समानम्। यः सत्त्वेषु प्राणिषु, प्रहरते प्रहारं करोति, सः पुरुषः, कथं मदीयः॥१०॥

---

१. वैशेषिकं—विशेष अर्थात् जो शास्त्र विशेषरूप में सत्त्व का भी उपकारक या सम्पादक हो। यह लौकिक विहारादि में इसी विशेष सत्त्व को प्रदान करने वाला रहने से ज्ञेय तथा व्यवहार्य दोनों हो जाता है।

इति श्रीमहाराजधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागर सर्वस्वटीकायां प्रथमः परिच्छेदः ॥

और प्राणिजन के उपकार का आधायक रहना ही मेरी श्रेष्ठ अर्चना है तथा जो इस सत्त्वरूप तत्त्व की अवहेलना या अपकारक हो वे मेरी अवहेलना या तिरस्कार के करने वाले हैं। मेरे मत में सभी प्राणिजन में रहने वाले सुख तथा दुःख समानरूप में कार्यवश रहने वाले माने गये हैं। इसी कारण जो इस सत्त्वभूत शास्त्र पर निन्दादि कार्यों से प्रहार करता हो उसे मेरा भक्त या उपासक आदि कैसे समझा जा सकता है ॥१० ॥

॥ नागरसर्वस्व का त्रिवर्ग निर्णय नामक प्रथम परिच्छेद सम्पूर्ण ॥

---o---

प्रज्ञाकलायौवनजातिसम्पत्-
सौन्दर्यविद्यामदगर्वितािभः ।
सुदुर्लभाभिर्वरसुन्दरीभिः
संभोगसंजातसुखं यदिच्छेत् ॥१ ॥
कालोचितैर्धूपितधौतवस्त्र-
रत्नोज्ज्वलैराभरणैरनेकैः ।
कण्ठोपकण्ठोल्लसिताग्रपुष्प-
स्त्रग्भिश्च मत्तालिकुलाकुलाभिः ॥२ ॥
नानाविधामोदविदग्धवासैः
श्रीखण्डताम्बूलशुभाङ्गरागैः ।
नरोत्तमो मन्मथशास्त्रवेदी
प्रसाधयेत् साधु निजं शरीरम् ॥३ ॥

(श्लोकत्रयेणान्त्यकुलकम् ।)

नरोत्तमो, मन्मथशास्त्रवेदी कामशास्त्रवेता, वरसुन्दरीभिः वरस्त्रीभिः, समं यदि संभोगसुखं इच्छेत् तदा साधु प्रथमं निजं शरीरं, प्रसाधयेत् अलङ्कुर्यात् । कथंभूताभिः वरसुन्दरीभिः? प्रज्ञाकलायौवनजातिसम्यक्सौन्दर्यविद्यामदगर्विताभिः—प्रज्ञा ज्ञानं, कलाः चतुषष्टिकलाः, यौवनं तारुण्यं, जातिः उत्तमजातिः, सम्यक्सौन्दर्यं उत्तमरूपं, विद्याः नानाविद्याः, मदः अभिमानः, एताभिः गर्विताभिः

संयुक्ताभिः, पुनः कथंभूताभिः ? सुदुर्लभाभिः अत्यन्तदुःखलभ्याभिः । कैर्भूषणं कुर्यादित्याह— कालोचितैः ऋतुसमयोचितैः, धूपितधौतवस्त्रैः । पुनः कैः ? रत्नोज्ज्वलैः अनेकैः आभरणैः । पुनः कैः ? कण्ठस्य, उपकण्ठे समीपे, उल्लासिताग्रपुष्पस्रग्भिः अवलम्बितशोभनपुष्पमालाभिः, कथंभूताभिः स्रग्भिः ? मत्ताः, अलिकुलाः भ्रमरसमूहाः, तैः आकुलाभिः व्याप्ताभिः । पुनः कैः ? नानाविधाः नानाप्रकाराः, आमोदः सुगन्धः, विदग्धं ताम्बूलं, शुभाङ्गरागः शुभाङ्लेपनः, तैः ॥१ ।२ ।३ ॥

जो उत्तमलक्षण वाला एवं कामविद्या का अभिज्ञ मनीषी हो जिसे सर्वप्रथम परमश्रेष्ठं एवं यौवनादि से पूर्ण सुन्दरी स्त्रियों के साथ संभोगसुख की कामना हो तो सर्वप्रथम उसे अपने शरीर को ठीक से अलंकृत कर रखना चाहिये । वह इस कारण अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थों, विदग्धजन द्वारा सेवित वस्त्रादि पदार्थों, श्रीखण्ड लेपन, ताम्बूल सेवन तथा शरीर पर उत्तम अंगराग आदि धारण करे तथा अपने शरीर को ठीक से अनुरूप भावना के साथ अलंकृत रखे जो कि समयोचित हो तथा धूप से सुगन्धित एवं धुले हुए वस्त्रों को भी धारण करे तथा अलंकारों भी, जो रत्नों से जड़ित एवं उज्ज्वल वर्णों से दीप्त रहने चाहिये । इन रत्न-मालाओं को कण्ठ में पुष्पों की सुगन्ध से पूर्णमालाओं के साथ इन रत्नमालाओं को धारण करे जिससे सुन्दरीजन का प्रसादन एवं आकर्षण में प्रभाव उत्पन्न हो । क्योंकि श्रेष्ठ सुन्दरीजन जो अपनी विद्या, कलाएँ, यौवन, सौन्दर्य तथा मद से सदा पूर्ण होती हैं और दुर्लभ भी रहती है ।(१-३)

अनेकवाद्यं विविधास्त्रपंक्तिकं
सुपुष्पधूपोज्ज्वलराशिवासितम् ।
विचित्रसत्पट्टवितानशोभितं
प्रकल्पितात्यन्तमनोरमासनम् ॥४ ॥

प्रकम्पिपर्यङ्कसुघर्वरीरव-
प्रबुद्धपारावतकण्ठकूजितम् ।
रथाङ्गहंसस्वनरम्यदीर्घिका-
जलोर्भिसंलासकवातवीजितम् ॥५ ॥

विशुद्धभावोचितचित्रभूषितं
सुरागसिन्दूरविराजिकुट्टिमम् ।

प्रहृष्टचेतः शुकसारिकारवं
विनिर्मयेद्वासगृहं मनोरमम् ॥६ ॥

(श्लोकत्रयेणान्त्यकुलकम् ।)

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे भोगवासो नमः द्वितीयः परिच्छेदः ॥]

—०—

वासगृहं मनोरमं विनिर्मयेत्। कथंभूतं वासगृहम्? अनेकवाद्यं नानावाद्यसहितम्। पुनः किंविशिष्टम्? विविधास्त्रपंक्तिकं नानाशस्त्रश्रेणियुतम्। पुनः किंभूतम्? सुपुष्पधूपोज्ज्वधूपवासितं—सु शोभनं पुष्पं, धूपश्चासौ उज्ज्वलश्चेति धूपोज्ज्वलः, तैः धूपवासितम्। पुनः किंभूतम्? विचित्रसत्याट्टवितानशोभितं—विचित्रं नानाप्रकारं, सतः सुन्दरः, अट्टः अट्टारिकाः, वितानं चन्द्रातपः, तैः शोभितम्। पुनः किंभूतम्? प्रकल्पितं, अत्यन्तमनोरमं मनोहरं, आसनं यत्र तत् ।(४)। पुनः किंभूतम्? प्रकम्पो(म्पी?) यः पर्यङ्कः खट्वा, तस्य सुघर्घरीरवेण प्रबुद्धाः पारावताः तेषां कण्ठकूजितम्। पुनः किंभूतम्? रथाङ्गः, चक्रवाकः, हंसः, तयोः स्वनेन शब्देन, रम्या दीर्घिका तस्याः जलस्य ऊर्मिः तरङ्गः, तस्य संलासकः संचारको, यो वातः वायुः तेन वीजितम् ।(५)। पुनः किंभूतम्? विशुद्धिभावयोग्यचित्रेण भूषितम्। पुनः किं भूतमराजि सिन्दूरविराजिकुट्टिमं अत्यन्तरक्तवर्ण सिन्दूरेण शोभितं कुट्टिमं यत्र तत्। पुनः किंभूतम्? प्रहृष्टं सानन्दितं चेतो यत्र तत्। पुनः किंभूतम्? शुकसारिकारवं शुकसारिकयोः रवो ध्वनिः यत्र तत् ॥४-५-६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां द्वितीयः परिच्छेदः ॥

ऐसी सुन्दर भावनाओं के लिये उपयुक्त एवं मनोरम वासगृह का भी निर्माण करवाए जिसमें अनेक संगीत वाद्य विद्यमान हों। जिसमें आवश्कतानुरूप अनेक शस्त्रों को दीवार आदि स्थानों पर लगा रखा गया हो। जहां उत्तम सुगन्धित धूप से कक्ष को सुगन्धित बना रही हो। जिसमें विचित्र एवं सुन्दर अट्टालिकाओं में लगे वितान सुशोभित हो रहे हों। जिसमें सुन्दर आसन रखे हुए हों। जिसमें रखे लचकदार बिछौने से युक्त पलंगों की चरचर ध्वनि से कबूतर सतर्क होकर भाग रहे हों, जिसमें वापिकाओं की जल लहरें, चक्रवाक तथा हंसों की मधुर ध्वनि से रम्य हों तथा इन लहरों को चलाने वाला पवन

उनको बार-बार पंखों से डुलाने का कार्य कर रहा है। उत्तम रूप एवं भावों[१] से पूर्ण योग्य चित्र जिसमें लगाये गये हों। जहां की फर्श रक्तवर्ण के सिन्दूरी रंग से सुशोभित हो, जिसे देखकर मन आनन्द से भर जाए तथा जहां तोता एवं मैना के शब्दों की मधुर ध्वनि व्यक्त हो ॥४-६ ॥

(पद्मश्री कृत नागरसर्वस्व का भोगावास नामक द्वितीय परिच्छेद सम्पूर्ण)

---o---

रत्नोत्तमानां गुणदोषजातं
तद्धारकाणां च शुभाशुभानि ।
वर्णप्रभेदैर्मणिमण्डलानां
प्रस्तावतः सत्त्वहिताय वच्मि ॥१ ॥

प्रस्तावतः मणिमण्डानानां रत्नोत्मानां गुणदोषजातं तद्धारकाणां पुरुषाणां च शुभाशुभानि, वर्णप्रभेदैः, सत्त्वहिताय प्राणिहिताय, वच्मि वदामि इत्यर्थः ॥१ ॥

अव मैं प्रस्ताव पूर्वक प्राणिजन के उपयोगार्थ तथा उनके हितार्थ उत्तम शोभाकारक मणि आदि रत्नों के गुण तथा दोषों एवं उन्हें धारण करने वाले पुरुषों को प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फल को उनके वर्णादि प्रभेदों के साथ बतलाता हूं ॥१ ॥

दोषापमृष्टं मणिमप्रबोधा-
द्बिभर्ति यः कश्चन कश्चिदेव ।
तं बन्धदुःखामयबन्धुवित्त-
नाशादयो दोषगणा भजन्ते ॥२ ॥

कश्चन पुरुषः, कश्चिदेव, दोषापमृष्टं दोषकलङ्कितं मणिं, अप्रबोधात् अज्ञानात्, बिभर्ति धारयति, तं पुरुषं, बन्धः बन्धनं, दुःखं, आमयो रोगः, बन्धु इष्टः, वित्तं धनं, तेषां नाशादयः दोषगणाः भजन्ते ॥२ ॥

यदि कोई पुरुप अज्ञानवश किसी दोषादि से युक्त विशिष्ट मणिरत्न को धारण कर लेता है तो ऐसी त्रुटिवश उसे बन्धन, दुःख, व्याधि, बन्धु, वित्त आदि के नाश आदि दोषों की प्राप्ति हो जाती है ॥२ ॥

---

१. अर्थात् वहाँ श्रृंगाररस को प्रकट या सांकेतिक करने वाले चित्र लगाये गये हों।

गुणाः सुरुग्गौरवकान्तिमत्ताः
स्नैग्ध्यं महत्त्वं समताऽच्छता च।
दोषास्तया बिन्दुकलङ्करेखा-
स्त्रासो मलः काकपदं लघुत्वम् ॥३॥

हीरकानां एते गुणाः—सुरुक् सुन्दरं, गौरवं गरिष्ठं, कान्तिमत्ता तज्ज्योतिष्कता, स्निग्धं मसृणता, महत्त्वं यद्यत् स्थूलं, समता दशशृङ्गाण्यपि समानानि, अच्छता निर्मलता च। हीरकानां एते दोषाः—बिन्दुः जलबुद्बुदवत् रेखा, कलङ्कं शुक्लश्यामादि नानाचिह्नं, रेखाः रेखायुताः, त्रासः भग्नता, मलः मलिनत्वं, काकपदं काकचरणवत् चिह्नं, लघुत्वं लघुता ॥३॥

वज्र या हीरे के उत्तम गुणों में उसकी उत्तम रुचि या गरिष्ठ या कान्तियुक्त होना, उसकी स्निग्धता या चमक और उसकी महनीयता अर्थात् उसकी मोटाई की प्रशस्तता होना, उसके सभी कोण या नोकों की समानता होना, तथा उसका निर्मल रूप होना है। इसी प्रकार उसमें जल के बुद्बुदों-सी रेखा होना, उसमें सफेद या काले किसी धब्बे का दिखाई देना, अनेक चिह्न सी रेखाएँ दिखाई पड़ना, उसका कहीं से टूटा हुआ भाग दिखना, कुछ-कुछ मलिनीकृत रूप रहना, उसमें काकपद के समान किसी चिह्न या कलंक का रहना तथा हल्कापन होना हीरकमणि में दोष माने जाते हैं ॥३॥

तीक्ष्णाश्रिधारत्व-सविस्तरत्वं
गुणौ तु वज्रस्य वदन्ति तज्ज्ञाः।
शुक्त्युद्भवानां मृदुसूक्ष्मभेद-
सुवृत्तशुक्लत्वममी गुणाश्च ॥४॥

तज्ज्ञाः रत्नपरीक्षकाः, वज्रस्य हीरकस्य, द्वौ गुणौ वदन्ति। तत् किम्? तीक्ष्णाश्रिधारत्वं कोणधाराः अतीवतीक्ष्णाः, सविस्तरत्वं सविस्तारः॥ शुक्त्युद्भवानां मुक्ताफलानां अमी गुणाश्च—मृदु कोमलं, सूक्ष्मभेदं सूक्ष्मच्छिद्रं, सुवृत्तं सुकोमलं, शुक्लत्वं अतीवतेजस्विशुक्लता चेति ॥४॥

कुछ रत्नपरीक्षक इस वज्र के दो गुणों को बतलाते हैं। ये हैं—उसकी तीखी नोकों का धारदार होना, तथा उसका विस्तार यो मोटाई युक्त रहना।[१]

---

१. यहां कुछ रत्नों का दोषगुण के साथ विवरण दिया गया है— ऐसा विवरण किसी अन्य कामशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता। गुण-दोष प्रायः सभी रत्नों में निश्चित रूप से रहते हैं तथा शास्त्रकार इन्हें बोधनार्थ बतलाते हैं।

सीपों से निकाले गये मोतियों के गुणों में उनकी मृदुता या कामलता होना, बारीक छिद्र होना या हो जाना, ठीक से गोलाई रहना, सफेद वर्ण एवं चमक या आब रहना जिससे तेज निकलता हो या दिखलाई देता हो वे उत्तम तथा पक्व मोती होते हैं ॥४ ॥

सुजाति रत्नं परिवृद्धिहेतु-

र्निधानलक्ष्मीसुतसेवकानाम् ।

आरोग्यसौभाग्यफलायुषां च,

विजातिकं त्वाशु विनाशबीजम् ॥५ ॥

सुजाति रत्नं, निधानलक्ष्मीसुतसेवकानां परिवृद्धिहेतुः लक्ष्मीसुतसेवकानां परिवृद्धिहेतुः निवासकारणम्; आरोग्यसौभाग्यफलायुषां च परिवृद्धिहेतुः । विजाति रत्नं, आशु शीघ्रेण, विनाशबीजं विनाशकारणम् ॥५ ॥

उत्तम तथा अच्छे लक्षणों वाला जो रत्न हो तो वह सम्पत्ति के कोषागार पुत्र तथा इसके कार्य में लगे सहायक जन की वृद्धि में कारण या आधार बन कर श्री वृद्धि करता रहता है तथा इससे आरोग्य, सौभाग्य के फलों एवं आयु की भी प्राप्ति होती है, परन्तु जो इसके विपरीत लक्षणों का रत्न हो तो वह शीघ्रता से विपरीत फलदाता एवं विनाश का कारण हो जाता है।[1] ॥५ ॥

तथा च रत्नशास्त्रे—

"गुणवद्गुणसम्पदां प्रसूतिर्विपरीतं व्यवसनोदयस्य हेतुः ।" इति ॥

गुणवत् रत्नं चेत् गुणसम्पदां विभूतिः स्थानम् । विपरीतं दोषवत् चेत्, व्यसनोदयस्य दुःखोदयस्य, हेतुः कारणम् ॥

जैसा कि रत्नशास्त्र में बतालाया गया है कि—यदि कोई रत्न उत्तम लक्षण या गुणों से युक्त हो तो उससे गुणों तथा सम्पत्ति की स्थिति बनती है और यही यदि इन लक्षणों से विपरीत स्वरूप वाला हो तो विपत्ति को प्राप्त करवाने में यही कारण बन जाता है।

बन्धूकपुंस्कोकिलनेत्रगुञ्जा-

तुल्यच्छवियोंऽत्र स पद्मरागः ।

---

१. इस पद्य का शेष भाग—"न च मार्गविभागमात्रवृत्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः" यह है। अतः शास्त्रज्ञान तथा वस्तु के विभागपूर्वक दोषगुण को देख कर ही विद्वान् पुरुष हीरकादि रत्नों को धारण करें। रत्नविषयक यत्न विवरण अगस्तिमत तथा नरपति जयचर्या जैसे ग्रन्थों में भी मिलता है। यहां उसे अप्रासंगिक मान कर विस्तार से विवरण नहीं रखा गया है।

आकृष्टनीलीरसबुद्बुदाभो

यो वाऽलिपृष्ठद्युतिरिरिन्द्रनीलः ॥६ ॥

बन्धूकपुष्पं पुंस्कोकिलनेत्रं गुञ्जा एतेषां तुल्यत्यिषः समानतेजसः, स पद्मरागः। आकृष्टनीलीरसबुद्बुदाभः मथितनीलीरसभाण्डोत्थितबुद्बुद्तुल्यवर्णः इन्द्रनीलः, वा पक्षानतरे, अलिः भ्रमरः तस्य पृष्ठद्युतिः यो मणिः स इन्द्रनीलः ॥६ ॥

पद्मरागमणि बन्धूकपुष्प (पुंस्कोकिल) (नर कोकिल) के नेत्र या गुज्जा के समान रक्तवर्ण की कान्ति वाला होता है। जो रत्न नील के रंग के समान वर्ण रखने वाला या जो भ्रमर के पीठ की कान्ति सा नीलवर्ण हो तो वह "इन्द्रनील" नामक मणि है ॥६ ॥

खद्योतपृष्ठनवशाद्वलशैवलानां

तुल्यत्विषो मरकता मणयो भवन्ति।

रत्नोत्तमस्य हि शुभाशुभकारणस्यं

व्याख्याऽत्र तन्न, कथिता अधिकाश्च मुख्याः ॥ ७ ॥

खद्योतपृष्ठनवशाद्वलशैबलानां तुल्यत्विषः तुल्यतेजसः मकर (?मरकत) नामधेया मणयो भयन्ति। रत्नोत्तमस्य रत्नमुख्यस्य, हि यस्मात्, शुभाशुभकारणस्य, अत्र ग्रन्थे, मुख्या व्याख्या कथिता, अधिका न कथिता ॥७ ॥

जो रत्न जुगनू सा चमकीला तथा बाल तृणों या सेंवार नामक जलनीलिका या कंजी-सा हरा रंग वाला हो तो वह मरकत नामक मणि कहलाता है। यहां हमने उत्तम रत्नों के शुभाशुभ फल की केवल मुख्य व्याख्या या विशेषता ही संकेतिक की है इनकी अन्य ज्ञात या विस्तृत बातें यहां नहीं दिखलाई है ॥ ७ ॥

वेदूर्य एकः शिखिकण्ठनील-

स्तथाऽपरो वेणुदलप्रकाशः।

नानाविधा आकरयोनिभेदै-

र्वज्रं च मुक्ता मणयश्च संन्ति ॥ ८ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे रत्नपरीक्षा नाम तृतीयः परिच्छेदः॥]

एकः वैदूर्यः, शिखिकण्ठनीलः मयूरकण्ठसदृशवर्णः; तथा अपरो वैदूर्यः वेणुदलप्रकाशः वंशपत्रसदृशवर्णः। वज्रं हीरकं, मुक्ताः, मणयश्च, आकरयोनिभेदैः उत्पत्तिस्थानभेदैः, नानाविधाः नानाप्रकाराः, सन्ति ॥ ८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां तृतीयः परिच्छेदः ॥

कुछ वैदूर्यमणि मयूर के कण्ठ के समान नीले वर्ण की तथा दूसरी ये ही वंश या बांस के पत्तों के समान (गहरी हरी) मानी गयी है। इनमें हीरा, मोती तथा मणियां अपने-अपने उत्पत्तिभूत आकारों वर्णों तथा स्थान की भिन्नता के कारण नाना प्रकारों वाले होते हैं ॥८ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में रत्नपरीक्षा नामक तृतीय परिच्छेद सम्पूर्ण ।)

——o——

नानाविदग्धवासा मुख्या मदनप्रदीपकाः ख्याताः ।
वरकामुकः पर्यतत्नाच्छिक्ष्येतादौ युगन्धशास्त्रेभ्यः ॥१ ॥

नानाविदग्धवासाः नानामनोहरगन्धाः, मदनप्रदीपकाः कामबोधकाः, ख्याताः। वरकामुकः श्रेष्ठकामुकः, प्रयत्नात्, आदौ प्रथमतः, गन्धशास्त्रेभ्यः, शिक्ष्येत शिक्षां कुर्यात् ॥१ ॥

कामभावना एवं शास्त्रविशेपविज्ञाता पुरुप को अपने उत्तम उद्देश्य तथा स्थान को देखकर अनेक समृद्धपुरुष के योग्य धारण किये जाने वाले वस्त्रादि की जो मुख्य रूप में कामभाव के बढ़ाने वाले होते हैं, उनका ज्ञान तथा उत्तम सुगन्ध पदार्थों का ज्ञान सुगन्धशास्त्रों[1] के अनुशीलन से समझ लेना चाहिये ॥१ ॥

लोकेश्वरादिकेभ्योऽपटुमतिदुर्बोधगन्धशास्त्रेभ्यः ।
सङ्गृह्य सारभागं प्रविधास्ये सुप्रसिद्धपदैः ॥२ ॥

लोकेश्वरनामधेयादिकेभ्यः गन्धशास्त्रेभ्यः मन्दमतिबोधनमहाकठिनगन्ध-शास्त्रेभ्यः, सारभागं सङ्गृह्य सुप्रसिद्धपदैः अर्थ(थ ?र्थ ?) विधास्ये कथयिष्ये ॥२ ॥

अतएव मैं लोकेश्वर जैसे प्रसिद्ध गन्धशास्त्र के ग्रन्थों से अनुमति ऋजबुद्धि अभ्यासकों के लिये कठिन गन्धशास्त्रीय ग्रन्थों से सारतत्व को लेकर यहां उनका सार-संग्रह कुछ सरल शब्दों या प्रसिद्ध सर्वज्ञात शब्दों में बतला रहा हूं ॥२ ॥

---

१. प्राचीनकाल से गन्धादि का सेवन प्रचलित था तथा इस शास्त्र पर ग्रन्थ भी थे। जैसे—ईश्वरकृत गन्धयुक्ति तथा शार्ङ्गधरकृत गन्धदीपिका आदि। सम्प्रति इस शास्त्र के अनेक ग्रन्थ लुप्त भी हैं।

कुन्तलकक्षगृहादरवसनवदनसलिलपूगफलवासान्।
स्नानोद्वर्तनचूर्णे वर्ती द्वे धूपदीपाख्ये ॥३॥

किं प्रविधास्ये ? तदेव आह। कुन्तलः केशः, कक्षः, गृहोदरं गृहमेव, वसनं वस्त्रं, वदनं मुखं, सलिलं जलं, पूगफलं गुवाकः, वासः सुगन्धः,—तान्, स्नानं स्नानीयजलं, उद्वर्तनचूर्णं, वर्ती द्वे धूपदीपाख्ये धूपदीपस्य वर्तिकाद्वयम् ॥३॥

इस क्रम में केश, कक्ष, गृह, वस्त्र, मुख, जल, पूग (सुपारी), वस्त्र तथा सुगन्धित वस्तु जैसे सुगन्धयुक्त स्नानीय जल, ऊबटन चूर्ण, धूपदीप की आम सुगन्धित बत्तियां आदि का वर्णन करूंगा ॥३॥

नखकर्पूरकुङ्कुमागुरुशिल्हकमिति च केशपटवासः।
क्रमवृद्धिभागरचितं भागत्रयशर्करासहितम् ॥४॥ केशपटवासः

नख भाग १, कर्पूर२, कुङ्कुम ३, अगुरु ४, शिह्ल ५, एवं क्रमेण भागवृद्धिरचितं, एतेषां त्रिभागाः सितशर्कराः,—केशवासः ॥४॥

पत्रकशैलजशिल्हककुङ्कुममुस्ताऽभया चेति।
त्रिगुडाः काक्षिकवासो ग्रहतिथिशिखिरुद्रवेदकरभागाः ॥५॥

कक्षवासः।

पत्रक भाग ९, शैलज १५, शिह्लक ३, कुङ्कुम ११, मुस्ता ४, अभया हरीतकी २, एतेषां त्रिभागो गुडः,—कक्षवासः ॥५॥

इनके अनुसार क्रमशः नखला, केशर, कपूर, अगरु तथा शिलारस या शिलाजीत जैसे सुगन्धित द्रव्य से केश तथा कपड़ों को सुगन्धित किया जाता है। इन पदार्थों में क्रमशः एक-एक को दुगुना रखकर तथा इनके तीन भाग के बराबर इनमें उतनी ही शर्करा मिला कर (अर्थात् कर्पूर एक भाग तथा इससे दुगुना कङ्कुम या केशर, तिगुना अगरु तथा चौगुना शिल्ह। इस प्रकार रखें) जो चूर्ण बनाया जाय तो यह केशों को सुगन्धित करने वाला चूर्ण पदार्थ होता है। इसी प्रकार यदि पत्रक ३ भाग, शैलज या शिलाजीत १५ भाग, शिल्हक ३ भाग, कुङ्कुम ११ भाग, भद्रमुस्तन४ भाग तथा अभया हरीतकी २ भाग रखकर इनके तीन भाग गुड़ के साथ पदार्थ बनाया जाय तो यही कक्षवास या समग्र कक्ष को सुगन्धित रखने वाला चूर्ण होता है ॥४-५॥

कस्तूरी कर्पूरं कुङ्कुमनखमांसिवालागुरुकं च।
चन्दनगुडकं क्रमशो वर्धितभागं तु गृहवासः ॥६॥

कस्तूरी भाग १, कर्पूर २, कुङ्कुम ३, नख ४, मांसि (?सी) जटामांसि (?सी) ५, बालचन्दन ६, अगुरु ७, श्रीखण्ड ८, गुड ९, एवं क्रमेण भागवृद्धिः,—गृहवासः ॥६ ॥

और १ भाग कस्तूरी, २ भाग कर्पूर, ३ भाग कुङ्कुम, ४ भाग नखमाँसी या जटामाँसी, ६ भाग बालचन्दन, ७ भाग अगरु, ८ भाग श्रीखंड, ९ भाग गुड़ को क्रमशः भाग वृद्धि कर पदार्थ निर्माण करें तो यह "ग्रहवास" होगा ॥६ ॥

जातीफलकस्तूरीकर्पूरं चूतवारि-संस्थितम् (संपिष्टम् ?) ।
धूपितमगुरुकशिल्हकमधुगुडसितैश्च मुखवासः ॥७ ॥

जातीफलं, कस्तूरी, कर्पूरं, आम्ररसेन संपिष्टं, फलाभावे पत्रमपि संग्राह्यं, अगुरुशिल्हकमधुगुडशर्करासहितं, धूपितं धूमपानं कार्यं,—मुखवासः ॥७ ॥

यदि जायफल (जातिफल), कस्तूरी, कपूर को आम्र के रस में पीस कर या उसी के पत्तों से पीसें तथा उसमें अगुरु, शिल्हक, मधु, गुड़ तथा मिश्री को मिलाकर चूर्ण बनाएँ तो इससे "मुखवास" तैयार होता है ॥७ ॥

क्रयवर्धितं त्वगेलामांसीशठ्यगुरु कुङ्कुमं चापि ।
घनचन्दनजातीफललवङ्गकङ्कोलकर्पूरम् ॥८ ॥
अष्टांशवंशरोचनसुकलितमतिस्वल्पशर्करासहितम् ।
पिष्ट्वा सहकाररसैर्मुखवासो भूमिपालानाम् ॥९ ॥

वदनवासः ।

त्वग्भागएला २, मांसि(सी) जटामांसि(सी) ३, शठी ४, अगुरु ५, कुङ्कुम ६, मुस्त ७, अखण्ड ८, जातीफल ९, लवङ्ग १०, कङ्कोल ११, कर्पूरं १२, एतेषां अष्टांशं सुकलितं, अतिश्वेतं वंशरोचनं अतिस्वल्प शर्करासहितं एतानि आम्ररसैः पिष्टा, भूमि पालाना अयं मुखवासः । पूर्वोक्तमुखवासः सामान्यनाम् ॥ ८-९ ॥

क्रमशः बढ़ाते हुए त्वग्—१ भाग, एला २ भाग, मांसी (जटामांसी) ३ भाग, शठी ४ भाग, अगुरु ५ भाग, कुङ्कुम ६ भाग, मुस्ता ७ भाग, श्रीखंड ८ भाग, जातिफल ९ भाग, लवंग १० भाग, कक्कोल ११ भाग, कर्पूर १२ भाग, इनको अतिश्वेत वंशलोचन के साथ ठीक से मिलाकर अतिस्वल्प शर्करा के साथ आम्ररस में पीस कर यह मुखवास विशेषकर राजाओं के लिये विशेषरूप में बनाया जाता है। अन्य जो सामान्य मुखवास है, परन्तु यह उनसे भिन्न तथा विशिष्ट (होता) है ॥८-९ ॥

सूक्ष्मेलाकस्तूरीकुष्ठतगरपत्रचन्दनैः सुतनु ।
मलयानिलजलवासं रचय भूमिपालतिलकानाम् ॥१० ॥   जलवासः ।

हे सुंतनु ! भूमिपालतिलकानां नृपश्रेष्ठानां, एभिः औषधैः मलयानिलजलवासं रचय । तत् किमौषधम् ? सूक्ष्मैला, कस्तूरी, कुष्ठ, तगर, पत्र, श्रीखण्डसहिताः, नृपाणां जलवासः ॥१० ॥

जल को बास या सुगन्धित करने के लिये छोटी इलायची, कस्तूरी, कुष्ट, तगर, पत्र या जायपत्री तथा श्रीखण्ड को मिला कर सुगन्धित जल बनाया जाता है तथा यह मलयानिल जलवास कहा जाता है ॥१० ॥

कुष्ठतगरजातीफलकर्पूरलवङ्गकैलाभिः ।
वरतनु वासय शीघ्रं पूगफलं भूमिपालानाम् ॥११ ॥

पूगवासः ।

हे वरतनु उत्कृष्टतनु, एभिः औषधैः भूमिपालानां पूगफलं शीघ्रं वासय तत् किमौषधम् ? कुष्ठ, तगर, जातीफल, कर्पूर, लवङ्ग, एलाभिः सहितं, भूपतीनां पूगवासः ॥ ११ ॥

और कुष्ट, तगर, जातिफल (जायफल), कपूर, लौंग, एला को मिलाकर सुपारी को सुगन्धित करने से यह "पूगवास" या सुगन्धित सुपारी का योग बन जाता है ॥११ ॥

त्वगगुरुमुस्तकतगरं चौरशठीग्रन्थिपर्णकनखं च ।
कस्तूरीसंयुक्तं स्नानीयं तत् प्रशस्यते सद्भिः ॥१२ ॥

स्नानीयचूर्णवासः ।

सद्भिः सन्तजनैः, एभिः औषधैः युतं स्नानीयं प्रशस्यते । तत् किमौषधम् ? त्वग्, अगुरु, मुस्त, तगरं, चौर, शठी, ग्रन्थपर्णी, पर्णकंपत्रं, नखं, कस्तूरीयुतं,—स्नानीयचूर्णवासः ॥ १२ ॥

इन औषधियों के साथ उत्तम स्नानजल बनता है । इनमें त्वग, अगुरु, मुस्त (भद्रमुस्ता) तगर, चौर, शठी, ग्रन्थपर्णी, पर्णकपत्र (नख) तथा कस्तूरी को मिलाना पड़ता है । यह स्नान के योग्य चूर्णवास है ॥ १२ ॥

कस्तूरीकर्पूरं कुङ्कुमचन्दनमुदाहृतं क्रमशः ।
शशिकरवेदकलाकृतभागेन चतुःसमो गदितः ॥१३ ॥   चतुःसमः ।

कस्तूरी भाग १, कर्पूर २, कुङ्कुम ४, श्रीखण्ड १६, एवं क्रमेण कृतभागेन चतुःसमः गदितः कथितः ॥१३ ॥

कस्तूरी भाग १, कर्पूर २, कुङ्कुम या केशर ३, श्रीखण्ड ४, इस प्रकार इनको निर्दिष्ट भाग कर मिलाने पर "चतुःसम" नामक पटवास या चूर्ण बनता है ॥१३ ॥

कस्तूरीकर्पूरं चन्दनशैलेयनागागुरुकं च।
उद्वर्तनमिदमुत्तममविरतसेव्यं नरेन्द्रस्य ॥१४॥ उद्वर्तनम्।

इदं उत्तमं उद्वर्तनं नरेन्द्रस्य अविरतसेव्यं बारंबारं सेवनयोग्यम्। तत् किमौषधम्? कस्तूरी, कर्पूर, श्रीखण्ड, शैलेय, नागकेशर, अगुरुकं च—उद्वर्तनम् ॥१४ ॥

राजागण को निरन्तर उपयोग में आने वाले उबटन में सदा कस्तूरी, कर्पूर, श्रीखण्ड, शैलेय या शिलाजीत, नागकेसर, तथा अगरुक को मिला कर उबटन बनाते हैं। ।१४ ॥

शैलजवाललवङ्गकत्वक्पत्रकसुरभिशिल्हतगरं च।
मांसीकुष्ठसमेतं चूर्णे क्षितिपालतिलकानाम् ॥१५ ॥

क्षितिपालतिलकानां भूपालश्रेष्ठानां, इदं चूर्णम्। तत् किम्? शैलज, वाल, लवङ्ग, त्वक्, पत्र, उत्तमशिह, तगर, मांसी, कुष्ठं च॥ १५ ॥

श्रेष्ठ भूपालों के लिये बनाये गये उत्तम चूर्ण में शैलज या शिलाजीत, वाल, लवंग, त्वग्, जायपत्र, उत्तम शिल्ह, तगर, जटामांसी, तथा कुष्ट। इनको मिलाकर सुगन्धित चूर्ण बना लें ॥१५ ॥

कर्पूरागुरुचन्दनमुस्तकपूतिप्रियङ्गु-वालं च।
मांसी चेति नृपाणां योग्या रतिनाथधूपवर्तिरियम् ॥ १६ ॥

कर्पूर, अगुरु, श्रीखण्ड, मुस्तक, पूतिकरञ्ज, वाल, मांसी च; एतेषां वर्तिः, नृपाणां भूमिपालानां इयं—रतिनाथधूपवर्तिः योग्या ॥१६ ॥

रतिनाथ या कामदेव के लिये उपयुक्त धूपवर्ती या बत्ती को बनाने में कपूर, अगुरु, श्रीखण्ड, मुस्तक या मुस्ता, प्रियंगु, वाल, तता जटामांसी। इनसे सुगन्धित बत्ती राजाओं के लिए बनाई जाती है ॥१६ ॥

नखागुरुशिल्हकवालककुन्दुरुशैलेयचन्दनश्यामाः।
क्रमवृद्धिभागरचिता वर्ती रतिनाथकान्तेयम् ॥१८ ॥

धूपवर्तिः।

नख १, अगुरु २, शिल्हक ३, बाल ४, कुन्दुरु ५, शैलेय ६, श्रीखण्ड ७, श्यामा ८, एतेषां क्रमेण वृद्धिभागरचिता इयं रतिनाथकान्ता धूपवर्तिः ॥ १७ ॥

सुगन्धित धूपों की बत्ती में नख १, अगुरु २, शिल्हक ३, वाल ४, कुन्दुरु ५, शैलेय या शिलाजीत ६, श्रीखण्ड ७, श्याम ८। इन पदार्थों के क्रमशः एक-एक गुणा वृद्धि से बनायी गयी बत्ती भूपालजन की प्रिय रतिनाथवर्ति कहलाती है॥ १७॥

सुरदारूमरुवकमुस्तकलाक्षागुरुशालचूर्णकर्पूरम्।
नृपवासकगृहयोग्या मदनोद्भवदीपवर्तिरियम्॥ १८॥

देवदारु, मरुवक, मुस्त, लाक्षा, शालपर्णी, कर्पूर, इयं कामदेवोद्भवदीपवर्तिः राजनिवासगृहयोग्या ॥१८॥

राजाओं के निवास भवनों के उपयुक्त दीपवर्ति में देवदारु, मरुवक मुस्ता, लाक्षा, अगुरु, शालपर्णी तथा कर्पूर इन सभी को मिलाकर दीपक की वार्तिका या बत्ती बनायी जाती है ॥१८॥

गन्धसागुरुगुग्गुलुसर्जरसपूतिकर्पूरम्।
श्रीवासशिल्हकचन्दनमित्यपरा दीपवर्तिरियम्॥१९॥

दीपवर्तिः।

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे गन्धाधिकारश्चतुर्थः परिच्छेदः॥]

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां गन्धाधिकारश्चतुर्थः परिच्छेदः॥

इसी प्रकार यदि गन्धरस या सुगन्धित तैल, अगरु, गुग्गुल, सर्जरस(राल), पूति, कर्पूर, श्रीवास या तरल निर्यास तैल, शिल्हक, चन्दन इन द्रव्यों से निर्मित वर्तिका भी इसी प्रकार "दीपवर्तिका" होती है॥ १९॥

(पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में "गन्धाधिकार" नामक चतुर्थ परिच्छेद सम्पूर्ण)

---o---

कलाकलापैश्च युतं समस्तै-
र्गुणैरसङ्केतविदं हि कान्तम्।
प्रम्लाननिर्माल्यमिवोत्सृजन्ति
गुणाधिका नागरिकास्तरुण्यः॥ १॥

नागरिकास्तरुण्यः, हि यस्मात्, कलाकलापैर्युतं चतुःषष्टिकलाभिः युतं समस्तैः गुणैश्च युतं कान्तं, असंकेतविदं संकेतज्ञानरहितं, उत्सृजन्ति त्यजन्ति।

कमिव? प्रम्लाननिर्माल्यमिव मलिननिर्माल्यपुष्पमिव। कथंभूताः तरुण्यः? गुणाधिकाः ॥१ ॥

नागरिक युवती स्त्रियां चाहे चौंसठ कलाओं के ज्ञान से पूर्ण भी तथा अन्य अभीष्ट गुणों से युक्त भी प्रिय के रहने पर यदि उसमें कामशास्त्रीय संकेतों को समझने की क्षमता न हो तो ऐसे अधिक गुणों से पूर्ण भी युवक को मलिन निर्माल्य पुष्प की तरह दूर कर देती या परित्याग कर देती है ॥ १ ॥

ततोऽन्यचिन्तां परिहृत्य कामी
यतेत सङ्केतकशास्त्रकेषु।
सतां हि सम्मानसहस्त्रभाजां
यूनां वधूधिक्कृतिरेव मृत्युः ॥२ ॥

ततः तस्माद्धेतोः, अन्यचिन्तां परिहृत्य, संकेतशास्त्रेषु, यतेत यत्नं कुर्वीत। सतां यूनां सन्मानसहस्त्रभाजामपि सन्मानसहस्त्रं भजन्तीति तेषां, वधूभिः या धिक्कृतिः क्रियेत स एव मृत्युः ॥ २ ॥

अतएव अन्य बातों की चिन्ता एवं प्राप्ति का मोह छोड़कर कामशास्त्रीय संकेत-शास्त्रों को समझने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि अनेक सामाजिक सम्मानों से पूर्ण भी सज्जन युवक की युवतीजन द्वारा किसी कारणवश धिक्कार या उपेक्षापूर्ण व्यवहार प्राप्त करने पर (उसे) मृत्यु सी पीड़ा होती है ॥ २ ॥

नारीसङ्केतकं वक्ष्ये वक्रभाषाङ्गमुद्रयोः।
पोटलीवस्त्रपुष्पाणां ताम्बूलस्याप्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

वक्रभाषां वक्रोक्तिः, अङ्गमुद्रा अङ्गचारणं, तयोः, नारीसंकेतकं वक्ष्ये वदामि। पोतलीवस्त्रस्थितवस्तुग्रन्थिसंता(ज्ञा ?)नां वस्त्राणां, पुष्पाणां च, ताम्बूलस्यापि च, अनुक्रमेण संकेतं वदामि ॥ ३ ॥

इसी कारण अब मैं कामशास्त्रानुगत नारीजन की वक्रभाषा तथा उनके अंगों के गूढ़ संकेतों को आगे बतला रहा हूं। इनमें पोतली वस्त्र स्थित ग्रन्थि से ज्ञात वस्त्रों, पुष्पों तथा ताम्बूल प्रदान करने पर उनके संकेतार्थ को भी बतला रहा हूं ॥ ३ ॥

फलं पुंसि, स्त्रियां पुष्पं कुलप्रश्नेऽङ्कुरः स्मृतः।
दाडिमं तु द्विजे ज्ञेयं, पनसः(सं) क्षत्रिये स्मृतः(तम्) ॥४ ॥

तत्र संकेतमाह। पुंसि पुरुषप्रश्ने फलं ज्ञेयम्, स्त्रियां पुष्पम्, कुले अङ्कुरः, द्विजे दाडिमम्, क्षत्रिये पनसः स्मृतः ॥४॥

इनमें पुरुष विषयक प्रश्न में फल तथा स्त्री विषयक प्रश्नों में पुष्प, कुल विषयक प्रश्न में अंकुर द्विज से पूछे जाने पर दाडिम फलों एवं क्षत्रिय वर्ण से पूछने पर पनसफल का आशय होता है ॥ ४ ॥

कदलीजं फलं वैश्ये, तथाम्रं शूद्रजे पुनः।
राजपुत्रे द्वितीयेन्दुर्घनच्छायस्तु भूपतिः ।.५ ॥

वैश्ये कदलीजं फलं ज्ञेयम्। शूद्रे अम्रं रक्तफलम्। राजपुत्रे द्वितीयाया इन्दुः। घनस्य छाया धनच्छायः भूपतिः ज्ञेयः ॥ ५ ॥

इसी प्रकार क्रमशः वैश्यवर्ण में कदली फल तथा शूद्रगत फल में अम्र या रक्तफल या आम्रफल शुभ होता है। राजपुत्र विषयक होने पर द्वितीया तिथि का वर्धिष्णु चन्द्र तथा राजा के विषय में घनच्छाया शब्द से उत्तर शुभ होता है ॥५ ॥

दुःकुलः कालपुष्पं स्यात्, सरः सामन्तपुत्रके।
मध्यशो यून्यपक्वं स्याद्बाले, पक्वं तु वृद्धके ॥ ६ ॥

दुःकुले हीनकुले कालपुष्पं श्यामपुष्पं ज्ञेयम्। सामन्तपुत्रे सरः। यूनिमध्याह्नः। वाले अपक्वं स्यात्। वृद्धे पक्वम् ॥६ ॥

दुष्कुल के विषय में श्यामवर्ण का पुष्प, सामन्त पुत्र के विषय में सरोवर, किसी युवक विषयक प्रश्न में मध्याह्न तथा बाल विषयक प्रश्न में अपक्व तथा पक्व की संकेत स्थिति वृद्ध में समझी जाती है ॥ ६ ॥

ब्राह्मण्या कुन्दपुष्पं स्याद्राजपुत्र्यां तु मालती।
मल्लिका वैश्यपुत्र्यां तु, शूद्रपुत्र्यां तु कैरवम् ॥७ ॥

सुगमत्वान्न लिख्यन्ते। कैरवं कुमुदम् ॥७ ॥

वणिक्पुत्र्या सरोजं च, महत्यामुत्पलं तथा।
कामुके भ्रमरः प्रोक्तः, कामिन्यां चूतमञ्जरी ॥८ ॥

वणिक्पुत्र्यां सरोजं पद्मम्। महत्यां मन्त्रिपुत्र्यां उत्पलम्। कामुको भ्रमरः। कामिन्यां आम्रमञ्जरी प्रोक्ता ॥८ ॥

ब्राह्मणी के विषय को कुन्दपुष्प तथा राजकुमारी को "मालती" पुष्प से, वेश्यकन्या या पुत्री को मल्लिका पद से तथा शूद्रपुत्री को कैरव पद से अभिहित कर संकेत दिया जाता है। इसी तरह वणिक पुत्री को सरोज पद से तथा मन्त्री आदि बड़ों की पुत्री को

कमल शब्द से, कामुक को भ्रमर तथा कामिनी को आम्रमञ्जरी पद से संकेतिक किया जाता है ॥ ७-८ ॥

तथाऽऽह्वानेऽङ्कुशश्चापि, प्राकारो वारणे स्मृतः ।
छन्नचन्द्रो निशीथिन्यां, दिनेऽछन्नरविः स्मृतः ॥ ९ ॥

तथा तेनैव प्रकारेण, आह्वाने अङ्कुशः, प्राकारो आवरणः, वारणो हस्ती स्मृतः । निशीथिन्यां छन्नश्चन्द्रः, दिने छन्नरविः स्मृतः ॥ ९ ॥

इसी प्रकार आमन्त्रण या बुलवाने की अपेक्षा में अङ्कुश मुद्रा को आवरण की स्थिति के लिये प्राकार या आवरण वस्त्र का तथा हाथी को संकेतित करते हैं। इसी प्रकार रात्रि के लिये चन्द्र को आच्छादित रूप में तथा दिन के समय आच्छन्न सूर्य को संकेतित करते हैं ॥ ९ ॥

आद्ये यामेऽपि शङ्खः स्यान्महाशङ्खो द्वितीयके ।
पद्मस्तृतीयके यामे, महापद्मश्चतुर्थके ॥१० ॥

आद्ये यामे प्रहरे अपि शङ्खः स्यात्, द्वितीयप्रहरे महाशंखः, तृतीयप्रहरे पद्मः, चतुर्थप्रहरे महापद्मः स्यात् ॥ १० ॥

रामस्तु पञ्चमे यामे, विरामः षष्ठ उच्यते ।
प्रचरः सप्तमे ज्ञेयः, प्रत्यूषश्च तथाऽष्टमे ॥११ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे भाषासङ्केतकः पञ्चमः परिच्छेदः ॥]

पञ्चमे प्रहरे रामः उच्यते षष्ठे विरामः सप्तमे प्रवरः अष्टमे प्रत्यूषो ज्ञेयः ॥११ ॥

इति भाषासङ्केतकम् ॥

प्रथम प्रहर के लिये शङ्ख तथा द्वितीय प्रहर में महाशङ्ख शब्द, तृतीय याम के लिये "पद्म" शब्द का तथा चतुर्थयाम के लिये महापद्म शब्द का, पञ्चम प्रहर के लिये रामशब्द का, षष्ठ प्रहर के लिये विराम पद को, सप्तम प्रहर के लिये प्रवर तथा अष्टम प्रहर के लिये प्रत्यूष शब्द को संकेतार्थ रखा जाता है ॥१०-११ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में भाषासङ्केत नामक पांचवां परिच्छेद सम्पूर्ण)

—o—

क्षेमप्रश्ने कर्णलता, कथिता कथनेऽपि सा।

कचदंशस्तु कामार्त्तावुरः स्नेहे, शिरोऽर्चने ॥१ ॥

क्षेमप्रश्ने कुशलप्रश्ने कर्णलता हस्तेन स्पर्शनीया, सा कर्णलता कथने अपि कथिता। कामार्त्ता कचदंशः केशः स्पर्शनीयः, स्नेहे उरः वक्षःस्थले स्पर्शनीयम्। एते पताकया कार्य्याः ॥ १ ॥

इसी प्रकार क्षेम के प्रश्न में तथा कुशल प्रश्न में हस्त से कर्णलता को स्पर्श किया जाता है तथा यही किसी के साथ कथन के होने पर भी रखी जाती है। कामगत पीड़ा की स्थिति में केश का दंशन या स्पर्शन रखते हैं तथा स्नेह के संकेत में उरस्थल का स्पर्श किया जाता है जिन्हें पताक हस्त से करने का विधान है ॥१ ॥

मध्यमाऽवसरप्रश्ने तर्जनीपृष्ठयोजिता।

अवसरेऽञ्जलिर्ज्ञेय आह्वाने कुञ्चिताङ्गुलिः ॥ २ ॥

अवसरप्रश्ने मध्यमाङ्गुली तर्जनीपृष्ठयोजिता। अवसरे सति अञ्जलिर्ज्ञेयः आह्वाने आकारणे स एव अञ्जलिः विपरीतः कुञ्चिताङ्गुलिः ॥२ ॥

किसी अवसर के प्रश्न में मध्यमा अंगुली को तर्जनी के पृष्ठ में योजित करते हैं, अवसर से होने को अञ्जलिमुद्रा से भी दिखलाने का संकेत रखते हैं, तथा यही किसी के आह्वान पर भी रखा जाता है, परन्तु विपरीत भाव की दशा में इसी हस्त में अंगुलियों को संकुचित कर लेते हैं ॥ २ ॥

अङ्गुष्ठतर्जनीमध्याः पूर्वदक्षिणपश्चिमाः।

उत्तराऽनामिका चेति दिशो ज्ञेया अनुक्रमात् ॥ ३ ॥

पूर्वे अंगुष्ठः, दक्षिणे तर्जनी, पश्चिमे मध्यमा, उत्तरे अनामिका; एवं क्रमेण चतस्रो दिशः ज्ञेयाः ॥३ ॥

कनिष्ठमूलमारभ्य रेखाः पञ्चदश क्रमात्।

अंगुष्ठस्योर्ध्वरेखान्तः स्मृताः प्रतिपदादिषु ॥४ ॥

कनिष्ठामूलं आरभ्य अंगुष्ठस्य उर्द्धवरेखान्तं अंगुलिं प्रति रेखात्रयं क्रमात् पञ्चदश रेखाः भवन्ति, तेन प्रतिपदाद्याः पञ्चदश तिथयो भवन्ति ॥४ ॥

शुक्ले वामकरे ज्ञेया असिते दक्षिणे करे।

यद्यत् स्पृशन्ति कामिन्यस्तस्यार्थे निपुणः स्मरेत् ॥५ ॥

शुक्लपक्षे वामकरे रेखा कर्तव्या। कृष्णपक्षे दक्षिणकरे रेखा कर्तव्या। कामिन्यः यत् यत् स्पृशन्ति तत्स्थानं निपुनं(णं ?) स्मरेत् ॥५ ॥

इति अङ्गसङ्केतम् ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे अङ्गसङ्केतकं नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥]

दिशाओं को दिखलाने की दशा में अंगूठे से पूर्व दिशा, तर्जनी से दक्षिण दिशा, मध्यमा से पश्चिम दिशा, अनामिका से उत्तर दिशा, इस क्रम में संकेतित करने में रखने हैं। इसी प्रकार अंगूठे से उध्र्वरेखा तक की पन्द्रह हस्त रेखाओं से उनसे प्रतिपद आदि पन्द्रह तिथियों को संकेतार्थ रखा जाता है। इनमें भी बाएँ हाथ से शुक्लपक्ष गत तथा दक्षिण हाथ से कृष्णपक्षगत तिथियों को संकेतित कर बतलाते हैं। ये पन्द्रह तिथि प्रत्येक मास के पक्षों की समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि कोई तरुणी स्त्री किसी विशेष स्थान का स्पर्श करे तो उस पर भी ध्यान देकर याद रखना चाहिए। यह अंगों से होने वाले संकेत हैं ॥३-५ ॥

(पण्डित पद्मश्रीकृत नागर सर्वस्व का अङ्गसङ्केतक नामक षष्ठ परिच्छेद सम्पूर्ण ।।)

---o---

स्नेहे सुगन्धिवस्तूनि पूगं खदिरसारकम्।
अतिस्नेहे च सूक्ष्मैला जातीफललवङ्गकम् ॥१ ॥

स्नेहे सुगन्धिवस्तूनि अथवा पूगफलं खदिरसारकं च। अतिस्नेहे च सूक्ष्मैला अथवा जातीफलं लवङ्गकं च ॥१ ॥

किन्हीं विशेष स्थितियों में (भी) पोटली में रखकर भेजी वस्तु से सूचित संकेत रहते हैं। इनमें किसी स्नेहमय व्यक्ति होने पर उसे पोटली में कोई सुगन्धित वस्तुएँ अथवा पूगफल तथा खैर के कत्थे के चूर्ण को तथा इन्हीं के साथ अतिस्नेही पात्र के लिये छोटी एला और जायफल और लौंग को रखकर प्रेषित या प्रस्तुत करते हैं ॥१ ॥

स्नेहच्छेदे प्रवालं स्यात्तद्युगं चिरसङ्गतौ।
कामज्वरे कटु द्रव्यं, मृद्वीका सङ्गमाशये ॥२ ॥

स्नेहछेदे प्रवालं, चिरसङ्गमे तद्युगं प्रवालयुगम्। कामज्वरे कटुद्रव्यं; संगमाशये संगमाशायां, मृद्वीका द्राक्षा ॥२ ॥

किसी से स्नेह के टूटने पर उसे प्रवाल तथा चिरकाल के बाद मिलन होने पर प्रवालों का जोड़ा भेजते हैं। कामज्वर की दशा में कोई कटु पदार्थ या द्रव्य भेजा जाता है तथा मिलन की अपेक्षा को सूचित करने के लिए द्राक्षा को भी संकेत रूप में भेजते हैं॥ २ ॥

देहार्पणे तु कर्पासं, जीरं जीवसमर्पणे।
भल्लातकफलं भीतौ, भयाभावे हरीतकी ॥३ ॥

देहार्पणे शरीरसमर्प्पणे, कार्प्पासं; जीवसमर्प्पणे जीरम्। भीतौ भये, भल्लातकफलं; भयाभावे अभये हरीतकी ॥३ ॥

देह के समर्पण के भाव के लिये कपास तथा जीवन के अर्पण के लिये "जीव" या वपोरिया पुष्प (बन्धूक पुष्प) को भेजा जाता है। भय प्राप्त रहने की दशा में भल्लातक फल को तथा अभय या निर्भय रहने की स्थिति बतलाने में हरीतकी (हरड) को भेजते हैं ॥३ ॥

सिक्थेन निर्मिता मुद्रा पञ्चाङ्गुलिनखाङ्किता।
वेष्टनं रक्तसूत्रेण पोटली परिकीर्त्तिता ॥४ ॥

सिक्थेन मधूच्छिष्टेन मुद्रा निर्म्मिता चिह्नं कर्तव्यम्, कथंभूता मुद्राः? पंचाङ्गुलिनखाङ्किता पंचाङ्गुलीनां नखेन अंकिता, रक्तसूत्रेण वेष्टनं, एवं चेत् पोटली परिकीर्त्तिता ॥४ ॥

जिसे मोम निर्मित मुद्रा से मुद्रित कर हाथों की पांचों अंगुलियों तथा नख से अंकित कर एक रक्तसूक्त से वेष्ठित कर बांधी गयी वस्त्र की पोटलिका बना कर भेजा हो तो वही यहां पोटलिका समझी जाती है ॥४ ॥

मदनासङ्गतः सिक्थः, संरागे रक्तवेष्टनम्।
पञ्चवाणक्षतत्वेन पञ्चाङ्गुलिनखक्षतम् ॥५ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे पोटलीसङ्केतकं नाम सप्तमः परिच्छेदः ॥]

सिक्थादिकेन कथं मुद्रा जाता? तदेवाह। सिक्थः मदनासंगः कामेन आसंगतः, संरागे अनुरागे रक्तवेष्टनं, पञ्चबाणक्षतत्वेन कामप्रहारत्वेन पंचाङ्गुलिनखक्षतम् ॥५ ॥

इति पोटलीसङ्केतम् ॥

इसमें संकेत यह होता है कि जहां मोम की मुद्रा हो वहां मोम पदार्थ से मदनासङ्ग का सङ्केत होता है तथा अनुराग की स्थिति को रक्तसूत्र से संकेतित करते हैं तथा पांचों अंगुलियों से स्पर्श के द्वारा पञ्चबाण के प्रहार के कारण आहत मनोभाव को दिखलाया जाता है ॥५ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में पोटली संकेतक नामक सप्तम परिच्छेद समाप्त ।)

---o---

स्मरेणोद्भिन्नदेहत्वे सछिद्रं वस्त्रमुत्तमम् ।
संरागे रक्तरागे च रक्त(वतं ?) काषायपीतकम् ॥१ ॥

स्मरेण कामेन उद्भिन्नदेहत्वे सति सछिद्रं छिद्रसहितं उत्तमं वस्त्रम् । संरागे अनुरागे रक्तमेव देयं, रक्तरागे विरागे काषायपीतकं एव देयम् ॥१ ॥

छिन्नवस्त्रं तु विच्छेदे, सदशाग्रन्थि सङ्गमे ।
एकं स्नेहे तथा चैवोभयस्नेहे तु तद्युगम् ॥२ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे वस्त्रसङ्केतकं नामाष्टमः परिच्छेदः ॥]

विच्छेदे वियोगे छिन्नवस्त्रं, ग्रन्थिसंगमे सदशा दशासहिता । एकस्नेहे एकं वस्त्रं, उभयस्नेहे तद्युगं वस्त्रद्वयमित्यर्थः ॥२ ॥

इति वस्त्रसङ्केतकं ॥

इसी प्रकार वस्त्रप्रेषण संकेत के क्रम में कामबाणों से शरीर विद्ध या जर्जर हो तो वस्त्र को छिद्र सहित रखकर भेजते हैं । यह वस्त्र उत्तम स्वरूप वाला होता है । अनुराग रहने पर इसी वस्त्र को रक्तवर्ण से रंजित कर रखते हैं, तथा अनुराग से हीन रहने की दशा में काषायवर्ण या पीतवर्ण का भी दिया जाता है । यदि विच्छेद या वियोग दशा हो तो वस्त्र को विच्छिन्न रख कर भेजते हैं तथा ग्रंथि से मिलाकर उसकी किनोरों को मिला देते हैं । यहां एक से स्नेह बतलाने पर एक तथा दोनों से स्नेह में दो वस्त्रों का एक साथ प्रेषण रखते हैं ॥१-२ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में वस्त्र संकेतक नामक अष्टम परिच्छेद सम्पूर्ण)

---o---

ताम्बूलविटकाः पञ्च कीर्त्तिता नरपुङ्गवैः ।
कौशलाङ्कुशकन्दर्पपर्यङ्कचतुरस्त्रकाः ॥१ ॥

नरपुंगवैः नरश्रेष्ठैः ताम्बूलस्य पंचविटकाः कीर्त्तिताः। तदेवाह-कौशलं शलाकासूत्ररहितं, अंकुशः अंकुशाकारः, कन्दर्प्पः बाणाकारः; पर्य्यंकः गोलकाकारः, चतुरस्त्रः चतुःकोणाकारः ॥१ ॥

अच्छे पुरुषों ने इस संदर्भ में पांच प्रकार के बीड़े दिखलाए हैं। इनमें (१) कौशल जिसमें डोरा तथा सलाई लगी होती है, (२) अंकुश—जिसका अंकुश सा नुकीला आकार होता है, (३) कन्दर्प—जिसका बाण जैसा बीच में आकार रखते हैं, (४) पर्यङ्क—जो गोल और लम्बे आकार का होता हो तथा (५) चतुरस्त्र—जिसका आकार चौकोन रहता है ॥१ ॥

कौशलः स्नेहबाहुल्ये, चाहृतावङ्कुशस्तथा ।
मदनार्तौ च कन्दर्पः, पर्य्यंकः सङ्गमाशये ॥२ ॥

स्नेहबाहुल्ये कौशलं ज्ञेयम्। आहृतौ अङ्कुशः ज्ञेयः। मदनार्तौ कामार्तौ कन्दर्पः। संगमाशये संगमाशायां पर्य्यङ्कः ज्ञेयः ॥ २ ॥

इनमें अतिशय स्नेह की दशा में "कौशल" नामक बीड़ा दिया जाता है। समीप लाने की दशा को दिखलाने वाला "अङ्कुश" बीड़ा भेजते हैं। मदनपीड़ा की दशा में "कन्दर्प" नामक ताम्बूल वीटक को भेजते हैं, तथा संगमाशा में "पर्यङ्क" नामक ताम्बूल वीटक भेजा जाता है ॥२ ॥

चतुरस्त्राभिधानो यो वीटोऽनवसरे सदा ।
अपूगपर्णमप्रीतौ, स्नेह एलादिसंयुतम् ॥३ ॥

सदा सर्वदा यः चतुरास्त्रभिधो वीटः अनवसरेरहिते। अप्रीतौ अपूगपर्णं गुवाकहीनं पत्रम्। स्नेहे स्नेहसहिते एलादिसंयुतम् ॥३ ॥

बिना किसी विशेष समय की दशा में चतुरस्त्र नामक "वीटक" दिया जाता है। जब किसी से विपरीत या असहमति का भाव हो तो ताम्बूल में बिना पूगफल के गूदारहित पत्रों का पान बीड़ा बनाते हैं तथा स्नेहादि रहने पर एलापत्रादि के चूर्ण के साथ ताम्बूल वीटक रखा जाता है ॥३ ॥

पृष्ठसंश्लेषपर्णं च विच्छेदे कृष्णवेष्टनं ।
मुखसंलग्नपर्णे चाविच्छेदे रक्तवेष्टनम् ॥ ४ ॥

पृष्ठसंश्लेषपर्णं विपरीतरक्षितपर्णं कृष्णासूत्रवेष्टनं विच्छेदे वियोगे। अविच्छेदे मुखसंलग्नपर्णे पर्णस्य मुखे मुखं संयोज्य रक्तसूत्रवेष्टनं कार्यम् ॥४ ॥

इस स्थिति में एक ताम्बूल से दूसरा ताम्बूल मिलाकर दोनों की पीठ मिलाकर रखते हैं। इसी को विच्छेद दशा में कृष्णसूत्र से बांध कर देतें हैं। इनमें संयोग दशा में ताम्बूल के दोनों मुख एक दूसरे से मिलाकर रखते हैं तथा उसे रक्तसूत्र से लपेट कर लेते हैं ॥४ ॥

मध्ये विदारितं पर्णं त्यजने कृष्णवेष्टनम्।
संरक्तपटसूत्रेण स्यूतं प्राणान्तसङ्गमे ॥५ ॥

त्यजने त्यागे, मध्ये विदारितं पर्णे कृष्णवेष्टनं कार्यम्। प्राणव्ययसंगमे रक्तपट्टसूत्रेण स्यूतं सीवनं कृतं ॥५ ॥

त्याग की स्थिति में ताम्बूल को बीच से चीर कर काले धागों से बांधते हुए देते हैं तथा प्राणान्त मिलन की दशा में उसे लाल पट्ट-सूत्र से सीकर भेजा जाता है ॥५ ॥

निर्भिन्नयोजितं पूगं मध्ये कुङ्कुमपूरितम्।
वाह्ये चन्दनपङ्काक्तमत्यर्थमनुरागतः ॥ ६ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे ताम्बूलसङ्केतकं नाम नवमः परिच्छेदः ॥]

निर्भिन्नयोजितं स्थाने स्थाने खण्डखण्डयोजितं पूतं, मध्ये कुङ्कुमेन पूरितं, पोवाह्ये चन्दनलेपितं, अत्यर्थो अनुरागो भवति ॥ ६ ॥

यदि ताम्बूल में रखी गयी सुपारी के टुकड़ों को जोड़कर रखें और उनके बीच में कुङ्कुम भरकर चन्दनरस से लेपित कर दिया जाता है तो यह अतिशय अनुराग का संकेतक माना जाता है ॥ ६ ॥

(इति पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में ताम्बूल संकेतक नामक नवम परिच्छेद सम्पूर्ण)

---o---

संरागारक्तिरागेषु रक्तकाषायपिञ्जरैः।
सूत्रैरनेहके कृष्णैः पुष्पमाला प्रगुम्फिता ॥१ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे पुष्प(माला) सङ्केतकं नाम दशमः परिच्छेदः ॥]

संरागो अनुरागः, अरक्तिः, विरागः, रागः अनुरञ्जनं, अस्नेहो अप्रीतिः, एतेषु क्रमेण रक्तकाषायपिञ्जरकृष्णैः सूत्रैः प्रगुम्फिता पुष्पमाला सङ्केतो बोद्धव्यः ॥१ ॥

अनुराग अथवा विराग तथा राग या रक्ति दशा को दिखलाने की स्थिति में गुंथी गई पुष्पमाला को गूंथते समय क्रमशः रक्त (अनुराग), काषाय—(विराग) तथा पिज्जर या कृष्णवर्ण के सूत्रों से गूंथी गयी पुष्पमाला को इसी भाव की संकेतक माला समझ कर भेजी जाती है ॥१ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में पुष्पमाला संकेतक नामक दशम परिच्छेद समाप्त)

—०—

यदपि न सुलभेह सा मृगाक्षी
सकलकलाकलनासु पण्डिता या।
तदपि निरवशेषकामशास्त्रा-
भिहितपदेषु मतिं विवर्द्धयेत् (सा) ॥१ ॥

सा मृगाक्षी यदपि न सुलभा, तथापि निरवशेषकामशास्त्राभिहितपदेषु मतिं विवर्द्धयेत् ज्ञानं कुर्यात्। कथंभूता मृगाक्षी? सकलकलाकलनासु समस्तकलाज्ञानेषु पण्डिता निपुणा॥ १ ॥

जो सुन्दर युवती सम्पूर्ण कलाओं आदि के शास्त्रज्ञान में कुशल हो तो ऐसी मृगनयनों वाली सुन्दरी सहज ही सुलभ नहीं होती है फिर भी धीर जन ऐसी स्त्रियों को प्राप्त करने के लिये पूर्णतः कामशास्त्रादि में बतलायी गयी उपायादि स्थितियों में ध्यान देकर उनका अनुशीलन करे तथा उनका ज्ञान भी संवर्द्धन करते रहें[१] ॥१ ॥

कथमपि यदि सङ्गमस्तया स्या-
द्व्रजति तदाहि पराभवं वराकः।
अविदितयुवतीकृतैकसङ्के-
तक इति रत्नकुमारको यथैव ॥२ ॥

---

१. यद्यपि गीत नृत्यादि चतुःषष्ठि कलाओं में निपुण नायिका स्थानीय कोई अंगना कठिनाई से ही गुणों से पूर्णरुप में प्राप्त होगी परन्तु इस शास्त्र के उपयुक्त संकेत, केशसंस्कार, शरीर प्रसादन तथा शरीर चेष्टा, प्रसादन तथा संकेतादि का ज्ञान रखना उपयोगी, सम्बद्ध तथा आवश्यक है तथा इनका सम्पादन भी आवश्यक ही है।

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे सकलसङ्केतकथनं नामैकादशः परिच्छेदः ॥]

कथमपि कष्टश्रि(शिल ?)ष्टया, तया स्त्रियां, यदि संगमः स्यात् तदा वराकः, पराभवं लज्जां, व्रजति गच्छति। कथंभूतः वराकः ? अविदितयुवतीकृतैकभेदः युवतीकृतसंकेतज्ञानरहितः। तत्र दृष्टान्तमाह, यथा पूर्वं रत्नकुमारः कश्चित्पुरुषः नार्य्याः सङ्केतमज्ञात्वा पराभवं जगामेति ॥२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां सङ्केतकथनः पञ्चमः।

अतएव ऐसी कलाओं से अभिज्ञ युवती सुन्दरी की प्राप्ति हो जाने पर उसी से मिलन की दशा बनना सम्भव हो जाए तो युवतीजन के संकेतिक ज्ञानों के न रहने से बेचारा युवक कभी पराभव तथा लज्जा की स्थिति प्राप्त करता है। जैसे पूर्व में रत्नकुमार नामक राजकुमार सुन्दरी युवती के संकेतिक भाव न समझने पर पराभूत हो गया था ॥२ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में सर्वसङ्केत कथन नामक एकादश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—o—

मृदुह्रस्वध्वजो यत्र प्रियोऽशक्तो द्रुतच्युतिः।
तत्र स्त्रियश्च काठिन्यात् स तु नीचरतोद्भवः ॥१ ॥

यत्र प्रियः स्वामी, अशक्तः, कथंभूतः ? मृदुह्रस्वध्वजः कोमलह्रस्वेन्द्रियः, द्रुतच्युतिः शीघ्रक्षरणः, स्त्रियो महाकाठिन्यात् सः पुरुषः नीचरतोद्भवः नीचशङ्गारस्य कारणम् ॥ १ ॥

(यदि) जो स्वामी (प्रिय) अशक्त (शक्तिहीन) एवं मृदु एवं छोटे आकार की इन्द्रिय वाला और शीघ्र क्षरण वाला हो तो वह स्त्रीजन के नीच पुरुष से रतिसम्बन्ध बनाने में कारण हो जाता है क्योंकि स्त्रीजन को कठोर तथा दीर्घाकार इन्द्रिय वाले पुरुष की ही कामना रहती है तथा वे असन्तुष्ट होकर उत्तम शील से भी इसी कारण हट या च्युत हो जाती है ॥१ ॥

नारी नीचरतोद्विग्ना स्वामिनं नाशयत्यपि।
श्रूयते चैव कर्णाटे कान्तया निहतः पतिः ॥२ ॥

नारी नीचरतोद्विग्ना नीचरतपुरुषात् भयातुरा सती । अपि संभावनायाम् । पतिं नाशयेत् । कर्णाटे कर्णाटदेशे, कान्तया स्त्रिया, पतिः निहतः इति श्रूयते । ।२ ॥

यदि नारी नीच पुरुष में रतिवश आकृष्ट हो जाए तो वह मानसिक उद्वेग की तीव्रता से अभिभूत होकर अपने स्वामी का विनाश[१] कर देती है। जैसे कि कार्णाट देश में एक चण्डरसा ने अपने पति को नष्ट कर दिया था ऐसी कथा सुनी गयी है ॥२ ॥

मृदुसाधनतादीनां शमनाय ततोऽधुना ।
सिद्धप्रयोगसन्दोहान् कथयामि समासतः ।।३ ॥

मृदुसाधनतादीनां शमनाय नाशाय, अधुना इदानीं, सिद्धप्रयोगसंदोहान् सिद्धप्रयोगासमूहान्, शमांनतः कथयामि आद्योपान्तेन ॥३ ॥

अतएव पुरुष के मृदु इन्द्रियों के शारीर दोषों आदि को दूर करने के लिये कुछ ऐसी सिद्ध प्रयोगों के कारण उचित औषधियों को संक्षेप में बतलाया हूं जिनसे ऐसी व्याधियों का उपशमन हो सके ॥३ ॥

नवमर्कटिकामूलं छागमूत्रेण पेषयेत् ।
लेपान्निरन्तरं तस्य लिङ्गं लोहोपमं भवेत् ।।४ ।। दृढीकरणम् ।

नवं नूतनं, मर्कटिकामूलं छागमूत्रेण पेषयेत्, निरन्तरम् लेपात् तस्या जनस्य लिंगं लोहोपमं भवेत् ।।४ ॥ दृढीकरणम् ॥

ऐसी स्थिति में यदि नवीन मर्कटिका (कक्वा या कपिच्छुका) की जड़ को बकरे के मूत्र में पीसकर उसका इन्द्रिय पर लेपन करे तो उसके निरन्तर लेपन से दृढीकरण होकर वह लौहवत् कठिन हो जाता है ॥४ ॥

---

१. कामासक्त युवती जब अपने स्वामी से असन्तुष्ट होती है, तभी नीचरत में वासना से अभिभूत होकर प्रवृत्त होती है तथा अपना शील तथा चरित्र दोनों का विनाश कर डालती है। यह विचार कर शास्त्रज्ञ ग्रन्थकारों ने सभी के लिए ऐसे पतन की प्रवृत्ति के उपशमन की भावना से कुछ उपाय तथा पदार्थों का सेवन आदि उपाय बतलाये हैं जिनका यहां निरूपण है। क्योंकि नीचरत से अनिष्ट भी होता है तथा अपराध भी। यही तथ्य शास्त्रकार ने भी यहां निर्देशित किया है। नीचरत में प्रवृत्त होने का विवरण यशस्तिलक चम्पू में (४.आ) कहा है—"कबरीनिजूटेनासिपत्रेण चण्डरसा पाण्डेए मुण्डीरं जघानं" इत्यादि जो घटना बतलायी है यही कदाचित् शास्त्रकार ने भी क्रुद्ध तथा क्रूरभावपूर्ण स्त्री की आसक्तिपूर्ण स्थिति में पूर्ति न होने की प्रतिक्रिया में कही है।(८)

अश्वगन्धा वचा कुष्ठं बला नागबला तथा ।
माहिषं नवनीतं च गजपिप्पलिकायुतम् ।।५ ।।
पिष्ट्वा तेषां विलेपेन स्थूलीकरणमुत्तमम् ।
कुर्यादादौ यदि स्वेदं मर्द्दनं च प्रयत्नतः ।।६ ।।

स्थूलीकरणम् ।

अश्वगन्धा, वचा, कुष्ठा, बला, नागबला, महिषनवनीतम्, गजपिप्पली, एतानि समभागानि पिष्ट्वा पेषयित्वा, आदौ प्रथमतः स्वेदं कुर्यात् । तदनन्तरं मर्दनं, तत्पश्चात् औषधेन विलेपनं, तेन उत्तमं स्थूलीकरणम् ।।५-६ ।। इति स्थूलीकरणम् ।।

इसके अतिरिक्त स्थूलीकरण के लिये प्रथम अश्वगन्धा, वचा, कुष्ठ, नागबला की जड़, महिषी के नवनीत में गज पिप्पली को लेकर समभाग में पीस कर उनका स्वेदन कर्म करे तथा पुनः इन्हीं को समभाग में पीसकर इनका लेपन करे तो इससे मनुष्य का दोष हटकर दृढ़ स्थूलीकरण होकर वह स्वस्थ हो जाता है ।।५-६ ।।

नागबलाद्वयमूलं गोक्षुरकं तथाश्वगन्धा च ।
गोदुग्धेन पिबेत् स हि नारीषु दुर्जयो भवति ।। ७ ।।

बलीकरणम् ।

नागबलामूलं, गोक्षुरं, अश्वगन्धं, एतानि समभागानि गोदुग्धेन सह पिबेत् पानं कुर्यात् तदा नारीषु स्त्रीषु दुर्जयो भवति ।।७ ।। बलीकरणम् ।।

ऐसे रोगी के बलीकरण या शक्ति प्राप्ति की चिकित्सा में दोनों नाग[१]बला की जड़, गोखरू, अश्वगंधा को समभाग में लेकर इनका चूर्ण गोदुग्ध के साथ पान करे तो उसे इतनी शक्ति आ जाती है कि वह नारीजन पर रतिकर्म में विजयी बन जाए ।।७ ।।

एककरञ्जोदरकृतधवलाशरपुङ्खपारदो नियतम् ।
धारयति बीजवेगं पुंसां वदनार्पितो यावत् ।। ८ ।।

शुक्रस्तम्भनम् ।

---

१. अर्थात् बला तथा नागबला नामक दोनों औषधियाँ ।

एककरञ्जोदरे श्वेतशरपुंख औषधं पारदश्च स्थापयित्वा पुंसां पुरुषाणां मुखार्पितं यावत्, तावद्वीजस्य वेगं (धारयति) शुक्रस्य स्तंभं भवेत्, नियतं निश्चितम् ॥८ ॥ शुक्रस्तंभनम् ॥

इसी प्रकार एक करंज के बीज में सफेद शरपुंख नामक औषध और पारद को रखकर मनुष्य इसे जब तक अपने मुख में रखकर रति करेगा तब तक शुक्रस्तम्भ बना रहेगा तथा वह स्खलित नहीं होगा[1] ॥८ ॥

पारदटङ्कणव्योपकाकमाचीमधुलिप्तं यत् ।
नारी स्यन्दति सुचिरं बहुच्छिद्रमिव कलशम् ॥९ ॥

योनिद्रावणम् ।

पारद, टङ्कण, व्योषा, का(क)माची, मधु, एतैर्यल्लिप्तं, नारी स्त्री, सुचिरं, स्यन्दति स्रवति, यथा बहुजलयुक्तं कलशं छिद्रयुक्तं भवति तथैव ॥९ ॥

यदि पारद, टंकण, व्याषा (सौंठ, पीपल तथा काली मिर्च जैसी त्रिकुट औषधि) काकमाची को मधु से लिप्त करे तो नारी का देर तक स्खलन होगा जैसे कलश में छिद्र होने पर पानी का बहाव हो। इससे योनि का द्रवण होता है[2] ॥९ ॥

अलिपक्षं काकजिह्वा स्वकर्णमलमश्रु बीजरक्तं च ।
नयति वशं यां वाञ्छति सुतरामशने विलेपे च ॥१० ॥

भ्रमरपक्ष, काकपक्ष, स्वकर्णमल, स्वअश्रु, स्ववीर्य्य, स्वरक्तं च, एतानि औषधानि अशने भोजने विलेपने च दत्त्वा यां स्त्रियं वाञ्छति तां वशं नयति ॥१० ॥

यदि भ्रमर पक्ष (भौंरे का पंख), काकपक्ष, अपने कान का मैल, अपने ही अश्रु, वीर्य तथा रक्त को मिला कर इनको भोजन तथा लेपन में जिस किसी इष्ट स्त्री को देता है तो वह उसी स्त्री को वश में कर लेता है[3] ॥१० ॥

---

१. स्मरदीपिका नामक ग्रन्थ में ऐसे अनेक औषधियोग दिये गये हैं। यथा—सितशरपंखामूले पारदरससहितमानने निहितम्। एककरञ्जवीजानारगं बीजं विधारयति ॥

२. यही—पारदं टंकणं व्योषा (घोषा) काकमाची तथा मधु । सिप्तलिंगश्चिरं नारीं द्रावयेद् रमणः सदा । (स्मर. दी.)

३. यही—काकजिह्वालिपक्षौ च स्वकायमलमश्रु च। रक्तं रेतश्च लेपेन वशीकुर्युर्मनीषिणः। (स्मरदीपि.)

गोरोचना शूकरशोणितेन
विभाविताऽनेकदिनं प्रयत्नात्।
स्याद्यन्मुखे तत्तिलकं प्रशस्तं
सर्वे जनास्तस्य वशे भवन्ति ॥११ ॥

अनेकदिनप्रयत्नात् गोरोचना शूकरशोणितेन विभाविता मर्दिता तत्तिलकं प्रशस्तं स्यात्। तेन सर्वे जनाः तस्य पुरुषस्य सुखं यथा स्यात्तथा वश्याः भवन्ति ॥११ ॥

यदि गोरोचना को सूकर के रक्त में मिला कर प्रयत्नपूर्वक अनेक दिनों तक शरीर पर उपयुक्त स्थान का मर्दन करे तथा इसी का तिलक करने से (जो कि प्रशस्त माना जाता है) उसके सभी जन अधीन होकर वश में हो जाते हैं ॥११ ॥

गोरोचना प्रियङ्गुमनःशिला नागपुष्पचूर्णं च।
अञ्जयेच्चक्षुरमीभिर्यस्तस्य वशत्वमेति जनः ॥१२ ॥

गोरोचना, प्रियंगु, मनःशिला, नागपुष्प, एतेषां चूर्णेन यः पुरुषः चक्षुः रञ्जेत्, तस्य पुरुषस्य अमीभिः औषधैः जनः वशत्वं एति ॥१२ ॥

एक अन्य उपाय यह है कि यदि पुरुष गोरोचना, मेनसिल, तथा नागपुष्पी के चूर्ण का जो पुरुष नेत्र में अंजन करता है तो इन औषधों के प्रभाव से सभी इष्टजन उसके वश में बने रहते हैं ॥१२ ॥

समागज बीजरजा वराङ्गं
तल्लिप्तसंशुष्कसितार्कवर्तिः।
तदञ्जनेनाञ्जितलोचनायाः
सदैव दासत्वमुपैति कान्तः ॥१३ ॥

वराङ्गसभोगजं बीजरजः तेन लिप्ता संशुष्कश्वेतार्कवर्तिः, तेन अञ्जनेन अञ्जितलोचनायाः दातुः पुरुषस्य सदैव दासत्वं उपैति ॥१३ ॥

यदि किसी स्त्री के सम्भोग से निकले वीर्य तथा रज से लिप्त कर सफेद आंकड़े की सूखी बत्ती बनाकर उसका कज्जल बना ले तथा इसे अपने नेत्रों में लगा कर रखे तो ऐसी स्त्री सदैव उसके वश में हो जाती है[१] ॥१३ ॥

---

१. यही—सम्भोगजं वचाबीजं लिप्त्वा चार्कदलं सितम्। तम्च्चूर्णाञ्जितनेत्राणामार्यापि वशतां नयेत् ॥ (स्मर. दी.)

सुवर्णबीजं सुतजारयुक्तं
तत्पूर्णगर्भं कलविङ्कदेहम्।
तं गोपयेद्भूतदिने श्मशाने
समुद्धरेद् भूतदिनेऽपरस्मिन्॥१४॥

सुवर्णबीजं पारदः, सुतः जारो यस्याः सुतजारा छागी, तस्या(:) पूर्णगर्भे, कलविङ्कदेहं चटकं, भूतदिने चतुर्दशीदिने, श्मशाने, गोपयेत् खनित्वा स्थापयेत्, अपरस्मिन् भूतदिने समुद्धरेत्॥१४॥

चूर्णे यदेषां निजबीजयुक्त-
मचिन्त्यमाश्चर्यमहाप्रभावम्।
यस्योदरान्तः पतितं प्रदत्तं
नूनं स दासत्वमुपैति दातुः॥१५॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे औषधप्रयोगो नाम द्वादशः परिच्छेदः॥]

एषां चूर्णे निजबीजयुक्तं एतन्महाप्रभावं अचिन्त्यं यस्य उत्त(द?)रान्ते पतितं प्रदत्तं वा। दातुः पुरुषस्य नूनं निश्चय स पुरुषः दातुः दासत्वं उपैति॥१५॥

इति महाराजाधिराजश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां षष्ठः परिच्छेदः॥

यदि पारद को बकरी के पूर्णगर्भ में चतुर्दशी तिथि के दिन चटक पक्षी के देह में रखकर उसे श्मशान में गाड़ दे तथा इसे दूसरी चतुर्दशी के दिन निकाल कर रख ले तथा बाद में इन सभी वस्तुओं को मिला चूर्ण बना कर उसे अपने वीर्य में मिला कर पुनः पीस कर रख लें। यदि वह जिस किसी को भी खिलाया जाएगा या दिया जाए तो वही पुरुष सदैव उसके वश में अधीन होकर बना रहेगा॥१४-१५॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में औषधप्रयोग नामक द्वादश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—o—

शुद्धोऽशुद्धश्च सङ्कीर्णस्त्रिधा भावः प्रकीर्तितः ।
शुद्धोऽपि त्रिविधो मन्दस्तीक्ष्णतीक्ष्णतरस्तथा ॥१ ॥

हावः श्रृङ्गारभवजः, त्रिविधः, शुद्धः अशुद्धः संकीर्णः प्रकीर्तितः । शुद्धोऽपि त्रिविधः त्रिप्रकारः—मन्दः तीक्ष्णः तीक्ष्णतरः ॥१ ॥

"भाव" के शुद्ध, अशुद्ध तथा संकीर्ण नामक तीन भेद माने गये हैं। इनमें शुद्ध नामक भाव के भी शुद्ध, मन्द तथा तीक्ष्णतर नामक भेदों से तीन प्रभेद माने गये हैं[१] ॥१ ॥

ईषत्प्रहसितो मन्दतीक्ष्णस्तु पुलकादयः ।
तीक्ष्णतरस्तु निःश्वासशोषितावयवोऽत्र यः ॥२ ॥

ईषत् किञ्चित् प्रहसितो हास्यः मन्दः, पुलकादयस्तीक्ष्णः, निःश्वासशोषितावयवः निश्वासेन शोषितः अवयवो यस्य स तीक्ष्णतरः ॥२ ॥

इनमें जहां कुछ मुस्कानपूर्ण भाव से हास हो तो वह "मन्द" जहां शरीर रोमाञ्चित होकर हासभाव हो-तो वह तीक्ष्ण एवं जहां शरीर के अंग में सांस के श्वास प्रश्वास भी बहने लगे तो वह तीक्ष्णतर कहलाता है ॥२ ॥

हेलाविच्छित्तिविव्बोकाकिलकिञ्चितविभ्रमाः ।
लीला विलासो हावश्च विक्षेपो विकृतं मदः ॥३ ॥

मोट्टायितं कुट्टमितं मौग्ध्यं च तपनं तथा ।
ललितं चेत्यमी हावाश्चेष्टाः श्रृंगारभावजाः ॥४ ॥

एताः श्रृंगारभावजाः चेष्टाः, तत्किमिति ? हेला १ विच्छित्ति २ विव्वोक ३ किलकिञ्चित ४ विभ्रम ५ लीला ६ विलास ७ हाव ८ विक्षेप ९ विकृत १० मद ११ मोट्टायितं १२ कुट्टमितं १३ मौग्ध्यं १४ तपन १५ ललितम् १६ ॥३-४ ॥

---

१. इस परिच्छेद में निरूपित भावविभाव, लक्षण तथा उदाहरण आदि कहीं-कहीं प्रसिद्ध साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थों से भिन्न या विलक्षण भी है ऐसा प्रतीत होता है कि यह राहुल आदि शाक्य आचार्यों के अनुसार यहां हो। इनमें भाव के शुद्ध आदि प्रभेद, शुद्ध के तीन प्रभेद, हेलादि सोलह प्रभेदों की भाव में समावेशना तथा इनमें भी जो हेला, विच्छिन्नि, विव्बोक, विभ्रम तथा विह्त (विहृत) के लक्षणों में प्रसिद्ध ग्रन्थों से भिन्न स्थिति या विलक्षणता भी है। शेष की स्थिति साहित्य शास्त्रादि से मिलती-जुलती है।

शृङ्गारगत भाव से रहने वाले चेष्टादि भावों में ये सोलह आते हैं। यथा—(१) हेला, (२) विच्छित्ति (३) विब्बोक (४) किलकिञ्चित् (५) विभ्रम (६) लीला (७) विलास (८) हाव (९) विक्षेप (१०) विकृ(हृ)त (११) मद (१२) मोट्टायित (१३) कुट्टमित (१४) मौग्ध्य (१५) तपन तथा १६) ललित ॥३-४ ॥

प्रौढेच्छा याऽभिरूढानां नारीणां सुरतोत्सवे।
श्रृंगारशास्त्रतत्त्वज्ञैर्हेला सा परिकीर्तिता ॥५ ॥

अभिरूढानां नारीणां या प्रौढेच्छा, कुत्र? सुरतोत्सवे, श्रृंगारशास्त्रतत्त्वज्ञैः सा हेला परिकीर्तिता ॥५ ॥

तद्यथा—

आसज्य स्वयमेव चुम्बनविधिं, याच्ञां विनाऽऽलिङ्गनं,
तल्पान्ते जघनेन वेपथुमता पर्यायणं जानुनि।
क्रोधोत्कम्पममर्षयत्यनुनयस्तन्व्याः स्मरक्रीडया,
प्रौढेच्छाभिरतिः प्रियस्य हृदयं हेलाचलात्कर्षति ॥६ ॥

कया-स्मरक्रीडया, कामक्रीडया केन-प्रकारेण? चुम्बनविधिं आसज्य चुम्बनविधिं कृत्वा, याच्ञां विना प्रार्थनां विना आलिंगनम्, तल्पान्ते कामयोगान्ते, वेपधुमता कम्पम(व ?)ता, जघनेन, जानूपरि अर्थात् पुरुषस्य जानूपरि पर्यारोहणम्, तन्व्याः स्त्रियः, अनुनयः भावः, क्रोधोत्कम्पं अमर्षयति कारयति ॥ अयं हेलाहावदृष्टान्तः ॥६ ॥

हेला—जो अभिरूढ़ नारीजन सुरतदशा या समय के बीच प्रौढ़ इच्छाओं या चेष्टाओं के प्रदर्शन करे तो श्रृङ्गाररस के विदग्ध एवं तत्त्वज्ञजन उसे "हेला" कहते हैं ॥५ ।।

जैसे कि—

जब उस कृशाङ्गी नायिका ने अपने प्रिय का चुम्बन स्वयं लेकर बिना किसी अनुनय के कम्पित होने वाली अपनी दोनों जंघाओं को नायक के घुटनों तक फैला कर आलिंगन कर प्रिय के बिछौने के एक कोने तक रखते हुए कहा कि "हे प्रिय, आप क्रोध के आवेगवश कहे मेरे कथनों को सुन कर भूल जाना" इस प्रकार संकेतों से अपनी प्रबल संभोग का आकांक्षा को दिखलाया तो ऐसे "हेला" भाव से प्रिय का मन उसने ओर अधिक वेग से आकृष्ट कर डाला ॥६ ॥

प्रसाधनानां दयितापराधा-
द्यदीर्षयाऽनादरतः सखीनाम्।
प्रयत्नतो वारणमङ्गनाया
विच्छित्तिरेषा कथिता बहुज्ञैः ॥७॥

दयितापराधात् ईर्ष्यया क्रोधेन, सखीनां अनादरतः, अंगनायाः, प्रसाधनानां अलंकाराणां, प्रयत्नतो वारणम्, विच्छित्तिः, बहुज्ञैः पण्डितैः कथिता ॥७॥

तद्यथा—

सखि, प्रेयात् स्वामी स्खलितमकरोत्, क्षन्तुमुचितं,
विधत्स्वालङ्कारं; नहि नहि बलादर्पयसि किम्।
अयि श्रेयश्चिन्त्यं सततमबलाभिः प्रणयिनो,
विभूषां मा मुञ्च प्रतनुमपि विच्छित्तिविषयाम् ॥८॥

हे सखि, प्रेयान् स्वामी, प्रियतमः, स्खलितं अपराधं, अकरोत्। तत् क्षन्तुम् उचितं अतः योग्यं, अलंकारं, विधस्त्व। नहि नहि, बलात् किं अर्पयति। अयि हे सखि, सततं बारंबारं, श्रेयः कल्याणं, प्रणयिनः स्वामिनश्चिन्त्यम्, विच्छित्तिविषयां प्रतनुं सूक्ष्मां, अपि विभूषां मा त्यज॥ अयं विच्छित्तिविषयो दृष्टान्तः ॥८॥

विंच्छिन्ति—अपने ही प्रिय के किसी अपराध के हो जाने पर यदि खीज या ईर्ष्यावश अपने ही भूषण, माला जैसे प्रसाधनभूत अलंकरणों को सखियों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक पुनः उसी नायिका को धारण करवा दिए जाने पर उसे पण्डितों के द्वारा विच्छिन्ति कहा जाता है ॥७॥

जैसे इस पद्य में—

हे सखि, स्वामी तो सदैव प्रिय होते हैं अतः यदि उनके द्वारा अपराध भी हो गया हो तो उसे क्षमा कर देना उचित ही है अतः शरीर पर आप इन अलंकारों को पुनः धारण कर लीजिये। यह सुन उसने कहा कि तुम मुझे जबरन इन अलंकारों को मेरे शरीर पर क्यों धारण करवा रही हो। अरी सखी, स्त्री को सदैव अपने स्वामी की मंगल कामना रखते हुए अपने धारित अलंकारों को इस प्रकार शरीर से नहीं उतारना चाहिए क्योंकि ये शरीर पर थोड़े भी रहने पर प्रिय को आकृष्ट कर शोभा एवं प्रभाव को बढ़ाने का बड़ा प्रभाव रखते हैं ॥८॥

अभिमतवस्तूपहृतावपि
गुरुर्दर्पादनादरस्तन्व्याः।
स्खलितप्रियस्य संयम-
ताडनमभिधायि विव्वोकम् ॥९॥

तन्व्याः नार्याः, अभिमतवस्तूपहृतावपि इच्छाविषयीभूतवस्त्वानयनेऽपि, गुरुदर्पात् महाहंकारात्, अनादरः, स्खलितप्रियस्य संयमः नियमः, ताडनं, विव्वोकं अभिधायि नाम ॥९॥

तद्यथा—

अनास्था वस्तूनामभिमतगुणानामुपहृतौ
धनो गर्वस्तन्व्या रुषि विहसिताडम्बरविधिः।
प्रहारः पादाभ्यां, यमनमपि काञ्च्या चरणयोः,
प्रियायाः विव्वोकं तदिदमतिधन्योऽनुभवति ॥१०॥

वस्तूनां अनास्था अनादरः, अभिमतगुणानां आनयने महागर्वः, क्रोधे हास्याडम्बरः, प(पा)दाभ्यां प्रहारः, काञ्च्याश्चरणयोर्नियमनः। अयं यो विव्वोककृतः तदिदं अतिधन्यः अनुभवति ॥१०॥

विब्वोक—यदि नायिका के द्वारा अभिमत वस्तुओं के लाने या प्राप्त होने पर भी अपनी अनिच्छा या अतिशय अहंकार बतलाकर उनको ठुकराना या उनका आदर न रखना तथा अपराधी स्वामी को पाद प्रहारों आदि से ताड़न करना या उसे करधनी आदि से बांधने का कार्य करना होता है तो वह "विब्वोक" भाव कहलाता है ॥९॥

वह सुन्दरी (नायिका) अपनी इष्टतम वस्युओं को अपने सम्मुख रखने पर भी उनकी ओर अपना मुँह नहीं उठाती है। इस कारण उसका बढ़ा हुआ घना क्रोध परिहास के बड़े-बड़े आडम्बरों की सृष्टि कर रहा है। क्योंकि क्रोधवश यह अपने अपराधी स्वामी को अपने पैरों से ठोकर लगा रही है और इसी के दोनों पैरों को अपनी करधनी से बांधकर रखता है। पर इस प्रकार के विब्वोक भाव का अनुभव भी किसी भाग्यशाली प्रिय को ही अपराधवश प्राप्त होता है ॥१०॥

स्मितशुष्करुदितहसितत्रासक्रोधश्रमाभिलाषाणाम्।
साङ्कर्ये प्रियदर्शनहर्षात् किलकिञ्चितं प्राहुः ॥११॥

.....साङ्कर्यं मिश्रता:........ ॥११॥

तद्यथा—

क्रन्दत्यवाष्पमभये भयमातनोति,
क्रोधं च नाटयति, तत्क्षणमेव हास्यम्।
आलम्ब्य हर्षमबला किलकिञ्चिताख्यं
हावं विभावयति पुण्यवतोऽन्तिकस्था ॥१२॥

पुण्यवतो जनस्य निकटस्था किलकिञ्चितं हावं विभावयति प्रकाशयति। केन प्रकारेण? अवाष्पं क्रन्दति। अभये भयं तनोति, क्रोधं च नाटयति प्रकाशयति, तत्क्षणमेव हास्यं; किं कृत्वा? हर्षं आलम्ब्य॥ अयं किलकिञ्चितविषये दृष्टान्तः ॥१२॥

किलकिञ्चित—अपने इष्ट प्रिय के दर्शन होने पर नायिका जब उतावली में बिना आंसुओं के रोना, अकारण हँसना या रोना, त्रास, क्रोध, श्रम तथा अभिलाष आदि से युक्त मिले-जुले भावों को प्रकट करती है तो इन लक्षणों से अपने समक्ष स्थित प्रियतम की सौभाग्यशालिता को ही निश्चित रूप में वह प्रकट करती है ॥११॥

वह नायिका जब आंखों में बिना आंसू लाए ही रोने की चेष्टा करती है और बिना किसी भय के कभी क्रोध और कभी शीघ्र ही हास्य दिखलाती है और प्रसन्नता से हर्ष विभोर होकर जब यह किलकिंचित् भाव को प्रकट करती है तो अपने समक्ष स्थित प्रियतम की सौभाग्यशालिता को ही अपने ऐसे हावों (क्रियाओं) से दिखलाती है ॥१२॥

क्रोधः स्मितं च, कुसुमाभरणादियाच्ञा,
तद्वर्जनं च, सहसैव विमण्डनं च।
आक्षिप्य कान्तवचनं लपनं सखीभि-
र्निष्कारणोत्थितगतं बत विभ्रमं तत् ॥१३॥

क्रोधः, स्मितं हास्यं, कुसुमादिप्रार्थना, तस्य पुष्पस्य निषेधं, सहसा तत्क्षणमेव विमण्डनं भूषणं च, कान्तवचनं आक्षिप्य अश्रुत्वा, सखीभिः साकं शयनं, निष्कारणे उत्थाय गम्यते, तत् विभ्रमं बत ॥१३॥

तद्यथा—

आस्तां नाथ शुभं भवे, सखि लता सिक्ता त्वया माधवी
कान्तं तन्मम संप्रयच्छ कुसुमं, किं वाऽमुना मे फलम्।
माल्यं निर्मलयामि, मौक्तिकमिदं न्यस्तं त्वया दह्यता-
मित्थं विभ्रमसंभ्रमो मदयति प्रेयांसमेणीदृशः ॥१४॥

हे नाथ, भवे संसारे, शुभे कल्याणे, आस्तां तिष्ठतां; हे सखि, माधवीलता त्वया सिक्ता सिंचिता, तत्तत्मात् मम कुसुमं संप्रयच्छ, अमुना कुसुमेन किं मम फलम्। माल्यं अहं निर्मलयामि, त्वया इदं न्यस्तं मौक्तिकं दह्यताम्, प्रेयांसम् (प्रेयांसं ?) ईदृशसंभ्रमः, मदयति आनन्दयति ॥१४॥

विभ्रम—जब बिना किसी कारण के क्रोध या मुस्कान (हंसते रहता) रहे तथा पुष्पों व आभरणों की इच्छा की जाती हो तथा उनको लाने का निषेध किया जाए, वस्त्र, पुष्प माला त्याग तथा अलंकारों को बिना किसी कारण ही फेंक देना या मलना होता हो, अपने स्वामी के कथन को न सुन कर या उनकी अनसुनी या उपेक्षा कर दूसरी ओर उठकर चलना तथा अपनी सखियों के साथ सोने या रहने का कार्य रखा जाए तो सह विभ्रम कहलाता है[१] ॥१३॥

हे स्वामिन्, अब आगे की बातें रहने दीजिये, आपका इस संसार में कल्याण हो। हे सखि, तुमने उस माधवी लता को सींच दिया होगा। हे प्रिय स्वामिन्, मुझे इस पुष्प को जरा दे दीजिए या अब इसे रहने दीजिये कोई लाभ नहीं। मैं अब इस पुष्पमाला को मल दूंगी तथा आपके द्वारा दी गई इस मोतियों की माला को भी जला देना अच्छा है। इस प्रकार मृगनयनी ललना के चपलतापूर्वक किये गये कथन उसीके प्रिय को और भी मदहोश कर देते हैं ॥१४॥

अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकायाः
सख्याः पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवेषगतिहास्यविलोकनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकथयन्ति लीलाम् ॥१५॥

अप्राप्तः वल्लभसमागमो यथा नायिकया सा तस्याः, सख्याः पुरः अग्रे, निजचित्तविनोदबुद्ध्या, आलापः संलापः, वेषः स्वरूपः, गतिः गमनं, हास्यं, विलोकनम्;, तदाद्यैः स्वामिनः अनुकृतिं सादृश्यं, लीलां आकथयन्ति ॥१५॥

---

१. साहित्य दर्पण के नि. सा. संस्करण की टिप्पणी में ग. का पाठ "विभ्रमस्त्वरयाकालेभूषास्थानविपर्ययः"। यथाह—"शाक्यभिक्षुः-"क्रोधः स्मितः च" इत्यादि। यह शाक्यभिक्षु निश्चित ही पद्मश्री है तथा यह पद्य भी नागरसर्वस्व का ही है यह स्पष्ट है।

तद्यथा—

वेणीबन्धकपर्दिनी, सिततनुः श्रीखण्डपांसूत्करैः,
केतक्येकदलेन्दुभृद्बिसलताव्यालोपवीतिन्यपि।
प्राक् पाणिग्रहणाद्विनोदरभसात् सख्याः पुरो लीलया
कुर्वाणाऽनुकृतिं हरस्य दिशतु श्रेयांसि वः पार्वती ॥१६॥

हरस्य अनुकृतिं सादृश्यं, कुर्वाणा पार्वती वः युष्मभ्यं श्रेयांसि दिशतु ददातु। कस्मिन् समये? पाणिग्रहणात् प्राक् पूर्वं, विनोदरभसात् सख्याः पुरः अग्रे, वेणीबन्धकपर्दिनी वेणीबन्धः कपर्दः जटाजूटो यस्याः सा, "कपर्दोऽस्य जटाजूटः" इत्यमरः। कथंभूता पार्वती? श्रीखण्डपंकोत्करैः सिततनुः, पुनः किंभूता? केतक्येकदलेन्दुभृत् केतक्याः एकदलं केतकीदलं तदेव इन्दुं बिभर्तीति भृत। पुनः किंभूता? शशिलता शशिवत् शुक्ला लता शशिलता मध्यमपदलोपी समासः, सैव व्यालः सर्पः, तदेव यज्ञोपवीतं यस्याः सा॥ अयं लीलाविषयो दृष्टान्तः ॥१६॥

लीला—जब नायिका प्रिय का मिलन प्राप्त न करने की दशा में अपना मनोविनोद करने के लिये सखियों के समक्ष अपनी उक्ति, वेप, गति, परिहास तथा विलोकन आदि कार्यों से अपने स्वामी का अनुकरण करती है तो यह "लीला" कहलाता है ॥१५॥

अपनी वेणी को ऊपर चढ़ा कर जटाजूट बनाकर बांधती हुई, चन्दन के चूर्ण को शरीर पर शुभ भस्म सा बनाकर लेप करती हुई, केतकी पुष्प की पंखुरी को मस्तक पर लगाकर अर्धचन्द्र बना लेने वाली, कमल नाल के तन्तुओं से सर्प का यज्ञोपवीत बना धारण करती हुई अपनी सखियों के समक्ष मनोरंजन कर अपने भावी स्वामी शिव के समग्र स्वरूप का अनुकरण करने वाली पार्वती सभी को समृद्धि प्रदान करें[१] ॥१६॥

यो वल्लभासन्नगतौ विकारो
गत्यासनस्थानविलोकनेषु।
वृथास्मितक्रोधचमत्कृतिश्च
विकूणनं चास्यगतं विलासः ॥ १७ ॥

---

१. साहित्यदर्पण में इसी पद्य की छाया से दूसरे श्लोक की रचना की गयी है। यथा—मृणालव्यालवया वेणीबन्धकपर्दिनी। हरानुकारिणी पातु लीलया पार्वती जगत्। (परि. ३ =)

बल्लभासन्नगतौ कान्तनिकटगमने, एवंप्रकारो यो विकारः स विलासः, तत्किम्? गमनासनस्थानदर्शनेषु वृथा हास्यं, वृथा क्रोधः, वृथा चमत्कारः, आस्यगतं विकूणनं मुखसंकोचनम् ॥ १७ ॥

तद्यथा—

स्खलितबहुलं पादन्यासे, विलोकनमन्यतः,
स्थितिरविषये, वक्राम्भोजं प्रयाति विकूणनम्।
स्मितमपि मुहुर्व्यर्थः क्रोधो वृथैव चमत्कृति-
र्दयितमभिगच्छन्त्यास्तन्व्या विलासरसो ह्ययम् ॥१८ ॥

दयितं कान्तं, अभिगच्छन्त्याः अनुव्रजन्याः, तन्व्या विलासिन्याः, अयं विलासरसः। तदेवाह—पादन्यासो विफलं यथा स्यात् तथा स्खलति, अन्यतः विलोकितं, अविषये अस्थाने स्थितिः, वक्राम्भोजं प्र(या)ति विकून(ण)नं पत्रपद्मसंकोचीकरणं, स्मितमपि हास्यमपि हर्षोत्थक्रोधः वृथा एव चमत्कारः ॥ अयं विलासरसविषयो दृष्टान्तः ॥१८ ॥

विलास—अपने प्रिय के समीप आकर खड़े होने, चलने की गति आदि के साथ परिवर्तन होकर जो विलोकन करने, असमय एवं स्थान के ही हंसने, क्रोधित हो जाने, वृथा ही चमत्कृत होते हुए आश्चर्य मिश्रित भावों में मुंह को रखकर इठलाना या मुंह को बनाना हो तो यही "विलास" कहलाता है ॥१७ ॥

प्रिय के समीप आने की स्थिति में कृशाङ्गी सुन्दरी के द्वारा अपने पैरों को उठाकर आगे रखकर ठमकाते हुए चूक करना, बिना किसी लक्ष्य के ही दृष्टि को फेरना और एक स्थान पर न टिकने देना, मुख कमल को सिकुड़ा कर अस्थान में बिना कारण मुस्कराना तथा आश्चर्य करना ये उसके ऐसे कार्य हैं जो मौज और आकर्षण के कारण बनते हैं तथा येह्नी विलास का सार है ॥१८ ॥

सवाष्पमद्गदालापः सस्मितापाङ्गवीक्षितम्।
प्रेमदाक्षिण्यवृत्तिश्च, तरुण्या हाव उच्यते ॥१९ ॥

तरुण्याः अयं हाव उच्यते। तदेव आह—सबाध्यगद्गदालापः साश्रुनेत्रेण गद्गद आलापः, व्सहासनेत्रान्तवीक्षणं, प्रेमः स्नेहः, दाक्षिण्यं आनुकूल्यं, तयोर्वृत्तिः ॥१९ ॥

तद्यथा—

प्राप्तेषु शृङ्गाररसाश्रयेषुं
हावेषु कामाङ्कुरचिह्नभूतः(तम् ?) ।
उत्पद्यते यत्स्मितवीक्षितोक्त-
मुन्मीलितं बालतया स हावः ॥२० ॥

बालतया बालस्वभावेन, स हाव उत्पद्यते, श्रृंगारसाश्रयेषु हावेषु प्राप्तेषु, यत्स्मितवीक्षिताक्षं उन्मीलितं कामाङ्कुरचिह्नभूतं उत्पद्यते ॥ अयं हावविषयोक्तिः

हाव—तरुणी नायिका के अश्रुपूर्ण नेत्रों से गद्‌गद आलाप करना, हास युक्त नेत्रों से तिरछे देखने के कार्यों से स्नेहाभिव्यक्ति, चातुर्य एवं अनुकूलता को अभिव्यक्त कर कुलीन एवं विनयपूर्णवृत्ति में उक्ति रखना "हाव" कहलाता है ॥१९ ॥

जैसा कि कहा है कि—जो श्र-ङ्गार का आधार लिये हो, जिनसे काम एवं अभिलापा के अंकुर सूचित होते हैं, जो मुस्कान तथा दृष्टिनिक्षेप के साथ कहे गये गद्गद वचन तथा प्रतिकूल उक्तियों से प्रकट हो तो उन्हें "हाव" कहते हैं ॥२० ॥

विंसुष्ठुलावेशमयो विकारो विविधः स्त्रियः ।
तमामनन्ति विक्षेपं मुनयः कपिलादयः ॥२१ ॥

स्त्रियाः विसंस्यू(ष्ठु)लावेशमयः विविधः विकारः तं कपिलादयो मुनयो विक्षेपं आमनन्ति वदन्ति ॥२१ ॥

तद्यथा—

धम्मिल्लं बद्धमुक्तं तिलकमसकलं न्यस्तवृत्तं च धत्ते
दृष्टावेकत्र कालाञ्जनमुरसि रणत्किङ्किणीं रत्नकाञ्चीम् ।
अंसोत्क्षिप्तार्द्धहारा क्रमुकरसकलामात्रशेषाधरान्ता
कान्ताविक्षेपमित्याद्यपि हरति मनो यत्नरुद्धोरुवासः ॥२२ ॥

इत्याद्यपि कान्तविक्षेपं मनो हरति । तदेवाह—धम्मिल्लं केशं बद्धमुक्तं किञ्चित् बद्धं किञ्चिन्मुक्तं, (ध ?)त्ते इति सर्वत्रान्वयः, अशकलं अखण्डितं तिलकं न्यस्तवृत्तं विपरीतेन न्यस्तं, एकत्र दृष्टौ एकचक्षुषि, कालाञ्जनं, उरसि वक्षःस्थले, रणत्किंकिनी(णी) रत्नकाञ्ची शब्दायमाना रत्नक्षुद्रघण्टिका, अंसे बाहुमूले, अर्धहारा उत्क्षिप्ता, अधरान्ता क्रमुकरसकलामात्रशेषा गुवाकरसमात्रशेषा । कथंभूतं कान्तविक्षेपं ? रत्नरुद्धोरुवासः ॥ अयं विक्षेपविषयो दृष्टान्तः ॥२२ ॥

विक्षेप—यदि युवती नायिका के अनेक मानसिक विकारों तथा परिवर्तनों के द्वारा जब शरीर के वेष वस्त्रादि का ठीक न रहना या ऐसा निरन्तर रखा जाए तो इसे कपिलादि आचार्य मुनिगण "विक्षेप" कहते हैं[१] ॥२१॥

यद्यपि उस युवती सुन्दरी का केश का जूड़ा आधा ही बांधकर छोड़ दिया गया है, ललाट पर तिलक पूरा एवं ठीक स्थान पर नहीं लगा है, काजल का एक आंख में स्पर्शमात्र हो पाया है, झन-झन शब्द करती करधनी ऊपर तक खिसक आयी है, गले का हार उठकर कँधे पर चढा गया है, ओष्ठ को एक भाग में ही पान-सुपार का रंग चढ़ा है, और वस्त्र का एक कोना जंघाओं से बार-बार खिसकने के कारण हाथ से धारण कर लिया गया है, फिर भी प्रिया का यह "विक्षेप" प्रियतम के मन को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ बन गया है, निश्चय ही ॥२२॥

वाच्यानां च पदार्थानां ज्ञानेऽपि यदभाषणम्।
नायकेषु मृगाक्षीणां विकृतं तत् प्रकीर्तितम्॥२३॥

मृगाक्षीणां ज्ञानेऽपि अवाच्यानां पदार्थानां नायकेषु यदि भाषणं, तद्विकृतं प्रकीर्तितम् ॥२३॥है।

तद्यथा—

कण्ठे क एव तव वल्लभ नूपुरोऽयं,
तत्पादभूषणमयं वलयस्तदानीम्।
इत्यादि वाच्यममिभाव्य वचो मृगाक्ष्या
ज्ञानेऽपि तद्विकृतमुत्सुकतां तनोति॥२४॥

हे वल्लभ कण्ठे एष अयं नूपुरः, कः अयं वलयः तदानीं पादभूषणं, मृगाक्षी इत्यादि अवाच्यं वचः अभिभाव्य, तद्विकृतं उत्सुकतां तनोति। अयं विकृतविषये दृष्टान्तः ॥२४॥

विकृ(हृ)त—मृगाक्षी नायिका अथवा नायकों का किन्हीं पदार्थों के ठीक से ज्ञान पर उनको उसी तरह ठीक से वर्णन न करना यही "विकृत" (विहृत) कहलाता है ॥२३॥

---

१. नि. सा. साहित्यदर्पण में ग. पुस्तक का पाठ इस प्रकार है—अन्यथा वेषविन्यासो विकाराद् यो भवेत् स्त्रियाम्। तमामनन्ति विक्षेपं श्रीशाक्यकपिलयादयः॥ यह भी शाक्य पद से पद्मश्री को ही संकेतिक किया गया है, यह स्पष्ट हो यहां कपिलाचार्य को कारिका में निर्दिष्ट बतलाया है, परन्तु इनके विषय में अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं।

हे प्रिय, आपके गले में यह क्या है। यह पैजन है और क्या। तब तो यह पैरों में पहनने का गहना है। अच्छा, तो इसे कड़ा समझ लो। इस प्रकार ज्ञान रहकर भी इस प्रकार बिना पदार्थ का ध्यान रखकर दिये गये उत्तररूप संभाषण ने प्रिय के अभिलाषा और कौतूहल को और अधिक बढ़ा दिया है[१] ॥२४॥

मधुपानमदप्रायस्तारुण्यातिशयोद्भवः।
विकारो यो वरस्त्रीणां तं वदन्ति मदं बुधाः ॥२५॥

वरस्त्रीणां, तारुण्यातिशयः यौवनातिशयः, विकारः, मधुपानमदप्रायः तुल्यः, बुधाः पण्डिताः, मदं प्राहुः ॥२५॥

तद्यथा—

आलापः स्मितकौमुदीसहचरो, दृष्टिः प्रहर्षोल्लसा,
भ्रूर्नृत्याध्वरदीक्षिता, चरणयोर्न्यासः समे भङ्गुरः।
वेशेषु क्षणिकस्पृहा, यदविधावद्वैतवादाश्रय-
स्तन्व्या नैकविकारभूर्मधुमदमायो मदः स्फूर्ज्जितः ॥२६॥

तन्व्याः अनेकविकारभूः स्थानं मदः, स्फूर्ज्जितः, जातः; कथंभूतो मदः? अद्वैतवादाश्रयः—अद्वैतं द्वितीयराहित्यं, आश्रयति, अहमेवेत्यर्थः। केन प्रकारेण? आलापः कथाप्रसंगः, स्मितमेव कौमुदी ज्योत्स्ना, तस्याः सहचरः; दृष्टिः प्रक(ह)र्षेण आनन्देन, उल्लसा क्षुभिता; भ्रूः नृत्ययज्ञदीक्षिता, चञ्चलेत्यर्थः; समे समाने चरणयोर्न्यासः भंगुरः वक्रः मदविधौ अहंकारविधौ, वेशेषु क्षणिकस्पृहा॥ अयं मदविषयो दृष्टान्तः ॥२६॥

मद—उत्तम प्रकृति की सुन्दरियों को उनकी उद्दाम यौवन दशा में उत्पन्न-होने वाला ऐसा आवेग जो मदिरापान के समान अनेक विकारों तथा परिवर्तन को उत्पन्न करने वाला हो तो उसे "मद" समझना चाहिये ॥२५॥

उस नायिका की मुस्कान भरी बातें चांदनी के समान प्रभाव वाली होकर निकल रही है, उसकी आंखें हर्ष के उल्लास से चमकीली बनी हुई रहती है, उसकी भौंहों ने नृत्ययज्ञ की दीक्षा धारण कर ली है, और उसकी प्रत्येक डग पर लड़खड़ाती रहती है।

---

१. नायक-नायिका के उक्तिप्रत्युक्ति रूप को यहाँ पद्य में रखा गया है। इनमें "कण्ठे" इत्यादि नायक की "वल्लभेति" नायिका की तदिति नायक की तथा वलयमित्यादि नायिका की उक्ति है। अतः यहां हार को अपन्हुत कर उसके गोलत्व की समता के दिखलाने के कारण नूपुरवलय आदि को बतलाना वक्रोक्ति भी है।

उसे अपने शरीर की सजावट का ध्यान कम रह गया है, तथा रतिक्रीड़ा के व्यवहार में अद्वैतवाद का उसने सिद्धान्त अपना रखा है। उस सुन्दरी तन्वी के इन शारीरिक अनेक परिवर्तनों में मदिरा के नशे सा कारणरूप में प्रकट होकर प्रकट होकर "मद" अधिक प्रसार कर रहा है ॥२६ ॥

दयितस्य कथारम्भे साङ्गभङ्गविजृम्भणम् ।
कर्णकण्डूयनं स्त्रीणां मोट्टायितमुदीरितम् ॥२७ ॥

स्त्रीणां दयितस्य कथारंभे साङ्गभङ्गविजृंभणं मोट्टायितं उदीरितं, कर्णकण्डूयनं च मोट्टायितमुदीरितम् ॥२७ ॥

तद्यथा—

तस्याङ्घ्रिद्वितयं नमन्ति मुनयोऽसावेककः सर्व-
वित्तं मृत्युञ्जयमामनन्ति विबुधाः सोऽद्याप्यपाणिग्रहः ।
इत्याकर्ण्य कथां हरस्य विजयापार्श्वे विवाहात् पुरा
भङ्क्त्वाऽङ्गानि विजृंभितं, गिरिभुवो मोट्टायितं पातु वः ॥२८ ॥

गिरिभुवः मोट्टयितं वः युष्मान् पातु। किं कृत्वा ? विवाहात्पुरा विजृम्भितं यथा स्यात् तथा अंगानि भङ्त्वा, पुनः किं कृत्वा ? विजयासखीपार्श्वे इति कथारहस्यं आकर्ण्य श्रुत्वा, इति किम् ? मुनयः तस्यांघ्रिद्वितयं नमन्ति, कः सर्ववित्तं न सेवेत, विबुधाः देवाः यं मृत्युञ्जयम् आमनन्ति, तस्य महादेवस्य पाणिग्रहः ॥ अयं मोट्वायितविषयो दृष्टान्तः ॥ २८ ॥

मोट्टायित—प्रिय के विषय में किसी बात के चलने पर उसे सुनने में अपने कान लगाना और अपने शरीर के अवयवों को आलस्य दिखलाकर जंभाई लेते हुए मरोड़ना आदि कार्यों को मोट्टायित समझा जाता है ॥२७ ॥

भगवती पार्वती का वही मोट्टायित भाव आपकी रक्षा करे जिसमें अपने विवाह के पूर्व विजया सखी के समीप स्थित पार्वती ने—"मुनिजन भी जिनके चरणों की वंदना करते हैं कि ये अकेले ही सर्वज्ञ हैं। देवगण इन्हें मृत्युञ्जय मानते हैं और उनका अभी विवाह नहीं हुआ है।" शिवदेव के ऐसे वर्णनों को ध्यान से सुनकर पार्वती ने अपने अंगों को मरोड़े और जंभाई ली ॥२८ ॥

केशस्तनादिग्रहणे हर्षादप्रतिमे मुखे ।
दुःखाविष्करणं तन्व्याः यत्तत्कुट्टमितं मतम् ॥२९ ॥

तन्व्याः स्त्रियाः, केशस्तनादिग्रहणे हर्षादप्रतिमे उत्तमे मुखे, यद्दुःखाविष्करणं तत्कुट्टमितं मतम् ॥२९ ॥

तद्यथा—

किं कान्त निर्दयतरं भुजकन्दलीभ्यां
द्वाभ्यां निपीडयसि मां, न सहिष्णुरस्मि।
वामभ्रुवामिति सुखेष्वपि दुःखभाजां
धन्यः श्रृणोति यदि कुट्टमिताक्षराणि ॥३० ॥

अभिमुखेषु अपि दुः(ख)भाजां वामभ्रुवां स्त्रियां (स्त्रीणां ?) कुट्टमिताक्षराणि धन्यः श्रृणोति, तदेव किम् ? हे कान्त निर्दयं यथा स्यात्तथा द्वाभ्यां भुजकन्दलीभ्यां मां किं निपीड(य)सि, अहं न सहिष्णुरस्मि ॥ अयं कुट्टमितविषयो दृष्टान्तः ॥३० ॥

कुट्टमित—सम्भोगदशा के समय नायिका के प्रिय के द्वारा केश, स्तन तथा अधर के ग्रहण की अतिशय हर्ष की स्थिति प्राप्त करने पर भी दुःख को प्रकट करना "कुट्टमित" भाव कहलाता है ॥२९ ॥

हे प्रिय, आप अपनी दोनों भुजलताओं से इतने निर्दयतापूर्वक जोरों से मुझे क्यों दबा रहे हैं। मैं इतना कष्ट सह नहीं सकती हूं। सुखों में भी दुःखों को प्रकट करते हुए युवतिजन के ऐसे कुट्टमित भाव से पूर्ण वचनों को जो सुनता है वह निश्चित ही भाग्यशालीजन है ॥३० ॥

मुंक्ताफलं तरोः कस्येत्यादि यत् कृत्रिमं वचः ।
वल्लभानां पुरः प्रोक्तं, मौग्ध्यं वदत तद्बुधाः ॥३१ ॥

हे बुधाः हे पण्डिताः, तन्मौग्ध्यं वदत, वल्लभानां पुरः, कस्य तरोः मुक्ताफलं इत्यादि यविसदृशं (?) अथवा अस्मि वचः ॥३१ ॥

तद्यथा—

के द्रुमास्ते क्व वा ग्रामे सन्ति केन प्ररोपिताः ।
नाथ मत्कङ्कणे न्यस्तं येषा मुक्ताफलं फलम् ॥३२ ॥

हे नाथ, के द्रुमा, क्व वा ग्रामे सन्ति, केन प्ररोपिताः, येषां फलं मुक्ताफलं मत्कङ्कणे न्यस्तम् ॥ अयं मौग्ध्यविषयो दृष्टान्तः ॥३२ ॥

मौग्ध्य—बचपन बीत जाने पर भी प्रिय के बीच जो नायिका के भोली-भाली बनकर बनावटी बातें बनाते हुए यह कहना कि मोती किस वृक्ष के फल लगते हैं, यह "मौग्ध्य"कहलाता है जिसे लौकिक व्यवहार में "आरिम"कहा जाता है। (३१)

हे स्वामिन् मुझे बतलायें कि मेरे कंकणों में जड़े हुए जो ये मुक्ताफल हैं, वे किस वृक्ष के हैं, किस गांव में हैं तथा उन्हें किसने लगाया था।(३२)

नागच्छति प्रियतमे प्रहरार्धमात्र-
मुद्वेगजं विविधचेष्टितमङ्गनायाः।
सख्याः पुरः श्वसनरोदनमात्मभाग्य-
निन्दादिकं कविवरास्तपनं वदन्ति ॥३३॥

कविवराः तपनं वदन्ति, प्रहरार्धमात्रं प्रियतमे नागच्छति सति, अङ्गनायाः उद्वेगजं विविधचेष्टितं ? सख्याः पुरः श्वसनरोदनं आत्मभाग्यनिन्दादिकं च ॥ ३३ ॥

तद्यथा—

नायाते प्रहरार्धमेव दयिते भङ्क्त्वा नितम्बे मिथः
संसक्ताङ्गुलिजालमध्यमधुना सख्यः कृतार्था इति।
व्याहारः स्वपनं मुहुः पुनरिदं गौर्यर्थनाभ्यर्चनं
तन्वङ्ग्यास्तपनं तनोति कृतिनः प्रेयाणमुच्चैरपि ॥३४॥

अतिकृतिनः तन्वङ्ग्या तपनं तमः उच्चैः प्रियमानं, करो(ती ?)त्यन्वय (यः। ?)न हि क्रिया रहितं वाक्यमस्ति। दयिते प्रहरार्धमेव नायाते, मिथः एकान्ते, नितम्बं भंक्त्वा संसक्ताह्गुलिजालबद्धं यथा स्यात्तया, सख्यः कृतार्धा पीडा कृता। व्याहारः विगतो आहारः व्याहारः, मुहुः बांरबारं, स्वपनं श्यं(?)पुनः गौरी इति अर्थनार्चनं अर्थात् सखीषु ॥ अयं तपनविषयो दृष्टान्तः ॥३४॥

तपन—कार्यवश बाहर जाने वाले प्रिय के रात्रि में आधा प्रहर बीतने पर अपने घर वापस न लौटने पर नायिका द्वारा उसके विषय में स्वयं ही उद्वेगवश अपनी सखी के आगे जोरों से उसांसे लोकर क्षण क्षण में सिसकना रोना और अपने भाग्य की निन्दा करते हुए दरवाजे की ओर देखने जैसे कार्य करना "तपन"कहलाता है।(३३)

प्रिय के बाहर जाने के बाद अभी आधा प्रहर ही बीता है पर फिर भी वह युवती नायिका अपनी कमर झुका कर उस पर अपनी सभी उँगलियों को एक साथ मिला कर रखती हुई बोली कि "अब मेरी सखी (सौतों) को संतोष हो जायेगा, फिर रो कर सिसकते

हुए उस कृशाङ्गी ने आंखों में नींर भर कर रोते हुए भगवती पार्वती की मनौती में प्रार्थना कर पूजने की प्रतिज्ञा की तो ऐसे कार्य और बातों ने उसके सौभाग्यशाली नायक(प्रिय) की स्थिति को और भी उन्नत कर डाला।(३४)

भ्रूनेत्रातिक्रियाशाली सुकुमारविधानतः ।
हस्तपादाङ्गविन्यासस्तरुण्या ललितं विदुः ॥३५ ॥

तरुण्याः सुकुमारविधानतः भ्रूनेत्रादिकियाशाली हस्तपादाङ्गविन्यासः ललितं विदुः ॥३५ ॥

तद्यथा—

स्कन्धाश्रितैकमणिकुण्डलमुन्नतैक-
भ्रूवल्लि साचिविनिवेशितदृष्टिपातम् ।
चेतो न कस्य ललितं हरति प्रियाया
हासो यतशुकनिरुद्धरदेन्दुकान्तः ॥३६ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविचचिते नागरसर्वस्वे हावनिर्देशो नाम त्रयोदशः परिच्छेदः ॥]

प्रियायाः ललितं कस्य मनो न हरति, यतः स्कन्धश्रितैकमणिकुंडलं स्कधे आश्रितं मणिकुण्डलं यत्र तत्,उन्नता एका भ्रूवल्ली, साचि तिर्यक् विनिवेशितं दृष्टिपातं यत्र तत्, हासः अंशुकनिरुद्धरदेन्दुकान्तः वस्त्रेण निरुद्धः दशनचन्द्रकान्तो यत्र तत् ॥ अयं ललितविषयो दृष्टातः ॥३६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्वटीकायां हाव निर्देशो नाम सप्तमः परिच्छेदः ॥

ललित—युवती नायिका का सुकुमार विधियो में भौहें, नेत्र आदि से तिरछेपन की क्रियाओं से युक्त हाथ तथा पैर आदि क्रियाओं को रखना "ललित"भाव कहलाता है। (३५)

जैसा कि– अपनी भौंहरूप लता को झुका कर तिरछी दृष्टि से जब वह युवती नायिका देखती है तो उसके एक कन्धे से मणि जड़ित कुण्डल टकराने लगता है और मुसकानों के बीच मुंह से बाहर आने वाली दांतों की चमक कपड़ों से टकरा कर रुक जाती है। इस प्रकार इस प्रिया के कार्यों से"ललित"भाव जब प्रकट होते हैं तो वह अपने प्रिय के चित्त को मोह कर क्यों कर नहीं मुग्ध करते हैं ?(३६)

(पण्डित पद्मश्री विचरित नागरसर्वस्व में हावादि भाव निर्देश नामक त्रयोदश परिच्छेद सम्पूर्ण)

परिणाहारोहाभ्यां षण्णवद्वादशाङ्गुलैर्गुह्यैः ।
शशवृषभाश्वाः पुरुषा हरिणी वडवेभिका नार्यः ॥१ ॥

परिणाहारोहाभ्यां विशालदीर्घाभ्यां, षडंगुलनवांगुलद्वादशांगुलैः, गुह्यैरिन्द्रियैः, शशवृषभअश्वाः पुरुषाः । नार्यः स्त्रियः, हरिणी, वडवा अश्वा, इभिका हस्तिनी ॥१ ॥

पुरुष तथा स्त्री जाति के क्रमशः गुह्येन्द्रिय के आकारगत स्वरूप तथा उसकी लम्बाई एवं गहराई के आधार पर उनकी जाति जानी जाने के कारण इनके प्रभेद शश, वृषभ, तथा अश्व एवं स्त्री की हरिणी, अश्वा, तथा हस्तिनी नामक जातियां शास्त्रकार मानते हैं । अतएव क्रमशः छः, नौ तथा बारह अंगुल के लम्बे या मोटे रहने वाले पुरुष के एवं इसी प्रकार छः, नौ तथा बारह अंगुल के प्रमाण में निम्नता या गहराई में स्त्री गुह्य के रहने पर इन प्रभेदों को समझना चाहिये ॥१ ॥

सुवचनसमदन्ताः कान्तिमन्तः प्रहर्षा
अविरलशाखा वर्तुलास्यं वहन्तः ।
चरणजघनहस्ते कर्णदेशे च कार्श्यं
सुरभिरतजलाढ्या मानिनस्ते शशाः स्युः ॥२ ॥

ते पुरुषाः शशाः स्युः, ते के? चरणजघनहंस्ते कर्णदेशे च कार्श्यं कृशता, कथंभूता शशाः ? सुवचनसमदन्ताः, पुनः किंभूताः ? कान्तिमन्तः, पुनः किंभूताः ? प्रहर्षाः, अविरलकरशाखा अविरलाङ्गुलयः, वर्तुलास्यं वहन्तः वर्तुलमुखाः, मानिनश्चा ॥२ ॥

(इनमें) जिनके जघन भाग, चरण तथा हाथ पतले रहते हों, जिसके दांतों की पंक्ति सम तथा सुन्दर हो, वदन कान्ति से पूर्ण एवं प्रसन्न हो, जिनकी हस्ताङ्गुलियां मिल कर रहने वाली रहे, जिनके कर्ण प्रदेश भी दुबलापन लिये रहते हों तथा जिनके वीर्य या स्त्रवित जल में विशिष्ट सुगन्ध रहती है तो ऐसे पुरुष "शश" जाति वाले समझना चाहिये ॥२ ॥

स्थौल्यं गलस्य ललितां गतिमावहन्त
आरक्तहस्तचरणं स्थिरपक्ष्मलाक्षि ।
कूर्मोदरं मृदुगिरं च, सुपीवराङ्ग
मेदस्विनश्च सुभगा वृषभा भवेयुः ॥३ ॥

ते वृषभाः भवेयुः, ते के? येषां गले स्थौल्यं, ललिता गतिः, किंभूताः ? आरक्तहस्तचरणं आवहन्तः, पुनः किंभूताः ? स्थिरपक्ष्मलाक्षि आवहन्तः, पुनः किं

पुस्तकालय
14186

भूता ? कूर्मोदरं मृदु शिरश्च आवहन्तः, पुन किं भूताः ? पीवराङ्गाः, मेदस्विनः स्थूलाः, सुभगा भाग्यवन्तः ॥३ ॥

जिन पुरुषों का गला मोटा हो, गति ललित हो, तथा जिनके हस्त तथा चरणतल रक्तवर्ण हों, जिनकी आंखें स्थिर बरौनी वाली हों, जिनका उदर[1] कूर्म के समान कोमस तथा जिनकी वाणी मृदु या मीठी हो जिनका शरीर गौरवर्ण तथा पुष्ट और भरा हुआ मोटा और युडौल हो तो ऐसा पुरुष "वृषभ" जाति का समझना चाहिये[2] ॥३ ॥

दीर्घैः कृशैर्वदनकर्णशिरोभिरोष्ठैः
सान्द्रैः शिरोरुहचयैः कुटिलाङ्गजङ्घाः ।
दीर्घाङ्गुलीजलदघोषविलोलनेत्रैः
पीनोरुशीघ्रगमनैः सुनखाः स्युरश्वाः ॥४ ॥

एमिर्लक्षणैरश्वाः स्युः, कैः कैः ? वदनकर्णशिरोभिरोष्ठैः, दीर्घैः कृशैः; शिरोरुहचयैः, सान्द्रैः घनैः; दीर्घाङ्गुलीजलदघोषविलोलनेत्रैः, पुनः कैः ? पीनोरुशीघ्रगमनैः, पुनः किंभूताः ? सुनखाः शोभनखाः ॥४ ॥

तथा जिनके मुख, कर्ण, ओष्ठ तथा शिरोभाग दीर्घ आकार वाले हों, जिनके केश लम्बे तथा पतले हों, जिनकी अंगुलियां मोटी, जिनकी मेघ सी घनी आवाज तथा चंचल नेत्र हों, पुष्टरूरु तथा शीघ्र गमन करने वाले और सुन्दर चमकीले नखों वाले जो हों तो उन्हें "अश्व" जाति के पुरुष समझना चाहिये[3] ॥४ ॥

ललितगमना तन्वी श्यामा हिमद्युतिशीला
विकटदशना मन्दालापा सुसान्द्रशिरोरुहा ।
समधिककफा स्वल्पाहारा सुगूढशिरोस्थिका
सुरभिसुरताढ्या च स्निग्धानना हरिणी भवेत् ॥५ ॥

इयं हरिणी भवेत्, किंभूता ? ललितगमना शोभनागमना, तन्वी क्षीणा, श्यामा, हिमद्युतिश्चन्द्रकिरणस्तद्वच्छीतला, विकटदशना विकटदन्ता, मन्दः कुत्सितः आलापो यस्याः सा, सुसान्द्रशिरोरुहा अतिघनकेशा, समधिककफा

१. उदर का कूर्मवत् आकार हो या वह कूर्म के उदर के समान कोमल हो । पञ्चसायक के मत में ये मध्यवेग वाले होते हैं ।
२. पूर्वापर पाठ की समीक्षा पर वह विवरण असम है ।
३. अनंगरंग तथा पञ्चसायक के मत में अश्व पुरुष चण्डरति वाला या उसमें सक्षम होता है ।

अधिकश्लेष्मा, स्वल्पाहारा अल्पभोजना, सुगूढ़ा सुगुप्ता शिरोस्थिका, सुरभिसुरताढ्या सुगन्धक्रीडा युक्ता स्निग्धानना चिक्कनमुखा ॥ ५ ॥

जो "हरिणी" प्रकार की स्त्री होती है उसकी ललित गति होती है, वह शरीर से दुबली और शरीर के गुणों में शीतोष्ण होती है, चन्द्र के समान शीतल स्पर्श वाली, जिसके दांत निकट हों, जिसका कथन मन्द हो, जिसके केश घने रहे तथा जिसकी कफ प्रकृति होती है, उसका आहार अल्प होता है, उसकी शिरोऽस्थि दिखती नहीं है, जिसकी रूचि सुंगन्धित पदार्थों या पुष्पों में होती है, तथा जिसका मुख स्निग्ध या चमकीला आकार वाला होता है[१] ॥ ५ ॥

पीनकठिनकुचभागं वक्रास्थिग्रन्थिगुल्फमुद्वहति ।
विपुलजघनमुष्णाङ्गं मृदुसुललितमांसलो बाहू ॥
स्वेदाम्बुकणोपचिता गौराङ्गी पललगन्धिरतसलिला ।
तुच्छोदरी समाङ्गी तरुणी पित्ताधिका वडवा ॥ ६ ॥

इयं तरुणी वडवा भवेत्, इयं का? या, पीनकठिनकुचभागं य(?) दृढं कुचं उद्वहति, वक्रास्थिग्रन्थि(गुल्फ)मुद्वहति, विपुलजघनं, उष्णांगं, मृदुसुललितमांसलौ बाहू उद्वहति, किंभूता? स्वेदाम्बुकणोपचिता, गौराङ्गी गौरदेहा, पललगन्धिरतसलिला मांसगन्धयुक्त (रतसलिला), तुच्छोदरी कृशोदरी, समाङ्गी समानाङ्गी, पित्ताधिका पित्तप्रधाना ॥ ६ ॥

जो "वडवा" या अश्वा प्रकार की स्त्री होती है उस युवति के बड़े-बड़े और कड़े उरोज होते हैं, शरीर की अस्थियां और गुल्फ भाग थोड़ी टेड़ी स्थिति वाला होता है, जिसकी जंघाएं मोटी, शरीर का स्पर्श उष्णता लिये हुए होता है, उसकी भुजाएं भरी हुई सुन्दर गति वाली होती हैं, इसके शरीर पर स्वेदाम्बु के कण चमकते रहते हैं तथा शरीर गौरवर्ण वाला होता है। इसका द्रवणजल मांस की गन्ध वाला होता है तथा उदर कृश एवं शरीर सम होता है और प्रकृति पित्त प्रधान होती है[२] ॥ ६ ॥

खर्वा स्थूला प्रकटदशना कुन्तलैः स्थूलनीलै
रक्ता वातप्रकृतिरकृशैर्हस्तपादैर्वराङ्गी ।

---

१. बाह्य शरीर गुण में यह शीतोष्ण तथा मानसगत आंतरिक स्थिति तथा गुणों में यही रतिलम्पट होती है। (र. रह तथा अनंगरंग)

२. इसका वर्ण पीत या पीला होता है। मीननाथ के मत में इसकी शरीर गन्ध मीन के समान रहती है। यह दीर्घरता होने से चण्डवेग में रुचि रखती है।

शीतोष्णाङ्गी बहुतरवचाश्चञ्चलाऽनल्पमेदा
रोमाकीर्णं वहति करिणी दानगन्धं वराङ्गम् ॥ ७ ॥

करिणी हस्तिनी, रोमाकीर्णं वराङ्गं भगं वहति, कैः ? स्थूलनीलैः कुन्तलैः केशैः, हस्तपादैः अकृशैः स्थूलैः, किंभूता ? खर्वा, स्थूला, प्रकटदशना रक्ता रक्तवर्णा वातप्रकृतिः वातप्रधाना, वरांगी उत्तमशरीरा, शीतोष्णांगी शीतोष्ममिश्रितशरीरा, बहुतरवचना, चंचला, अनल्पभेदा महास्थूला, दानगन्धा मदगन्धा ॥ ७ ॥

जो स्त्री "हस्तिनी" होती हैं उस युवती के सम्पूर्ण शरीर पर घने रोम छाये रहते हैं, शरीर ठिंगना तथा मोटा होता है, इसके दांत मोटे होते हैं, केश घने काले और लम्बे होते हैं, इसका वर्ण रक्त तथा यह वात प्रकृति वाली होती है। इसके हाथ और पैर मोटे-मोटे और शीत तथा उष्ण मिश्रित शरीर (स्पर्श) वाली, अतिशय बोलने के स्वभाव वाली, चञ्चल प्रकृति, शरीर (के स्थूल या) बादी से भरा हुआ और मद्य के समान या मधुगन्ध वाली स्राव रखती है[१] ॥ ७ ॥

नरः संलक्षितो व्यक्तमनेकैरश्वलक्षणैः ।
एकतो लिङ्गकौमल्याच्छशको जायते ध्रुवम् ॥ ८ ॥

नरः अनेकैः अश्वलक्षणैः संलक्षितो दृष्टः, एकतो लिङ्गकौमल्यात् शशको ध्रुवम् निश्चितं जायते ॥ ८ ॥

यदि अनेक अश्वों के लक्षणों को सामान्य रूप में रखते हुए यदि केवल एक लिङ्गगत कोमल स्थिति रखे यो यही "शश" जाति का पुरुष होता है ॥ ८ ॥

कक्षपादतलं तुच्छं गुरुत्वं च कुचास्ययोः ।
यस्याः सा हरिणी ज्ञेया याऽपीभीलक्षणैर्युता ॥ ९ ॥

या स्त्री इभी हस्तिंतीअत्र (त ?)ल्लक्षणैर्युक्ताऽपि विशेषैः सा हरिणी ज्ञेया, किंलक्षणं ? कक्षतलं पाद(तलं) तुच्छं स्वल्पं, स्तनमुखयोर्गुरुत्वं च यस्याः ॥ ९ ॥

---

१. यहां जो हस्तिनी आदि प्रभेद हैं वे गुह्यअंग के आकार, गुण-परीक्षण आदि को लेकर ग्रन्थकार ने बतलाये हैं, जबकि पद्मिनी आदि जाति विभाग अन्यत्र उनके शरीर वराङ्ग के गन्धगुण को लेकर भी वर्णित मिलता है। इन स्त्रियों के जातिभेद आदि का स्मरदीपिका में विवरण विस्तार से मिलता है।

इसी प्रकार हस्तिनी लक्षण वाली स्त्री युवती के पैरों के तल छोटे आकार के तथा जिसका मुख और उरोज मोटे या भारी हो तो वही "हरिणी" जाति की स्त्री समझी जाती है ॥९ ॥

हरिणीशशयोर्योगे वडवावृक्योस्तथाऽश्वहस्तिन्योः ।
उभयोः समरतमुदितं त्रितयं रतिशास्त्रतत्त्वज्ञैः ॥ १० ॥

रतिशास्त्रतत्त्वज्ञैः कामशास्त्रज्ञैः, त्रितयं उभयोः समरतं समानसुरतं, उदितं कथितं, कयोःकयोः ? हरिणीशशयोर्योगे, वडवावृषयोः, अश्वहस्तिन्योः, एत्त्रितयं समानम् ॥ १० ॥

अतएव शास्त्रकार हरिणी तथा शश जाति, अश्व तथा वृषभ जाति, अश्व और हस्तिनी जाति के संयोग में समरस संयोग माना है ॥ १० ॥

हरिणीवृषयोर्वडवाहययोर्द्वितयं तथोच्चरतमुदितम् ।
नीचद्वयं च वडवाशशयोर्वृषहस्तिन्योः ॥ ११ ॥

हरिणीवृषयोस्तथा वडवाहययोरेतद्द्वितयं उच्चसुरतं उदितं कथितम् । नीचद्वयं नीचसुरतद्वयं—वडवाशशयोः, वृषहस्तिन्योः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार हरिणी तथा वृष जाति, वडवा (अश्व) तथा हस्तिनी की रति उच्चतम शास्त्रकार मानते हैं, पर वडवा और शश पुरुष एवं हस्तिनी और वृष पुरुष का योग निम्नरतिवाला माना जाता है ॥ ११ ॥

अत्युच्चमश्वमृग्योः, शशकरिण्योश्च नीचरतम् ।
इति नवधा रतमुदितं समसुरतं तत्र साध्यमतम्(तमम् ?) ॥ १२ ॥

अश्वमृग्योः अत्युच्चं सुरतं, शशकरिण्योश्च तथा नीचरतं अतिनीचरतं, इति नवधा रतं नवप्रकार (कं ?) उदितम् । तत्र समसुरतं समानसुरतं साध्यतमं सुखसाध्यमित्यर्थः ॥ १२ ॥

इसी प्रकार अश्व तथा शश पुरुष की अतिशय उच्च या उत्तम रति तथा शश पुरुष और हस्तिनी युवती की रति अतिशय निम्न मानी गयी है। इस प्रकार रति या संयोग के नव प्रभेद या प्रकार बनते है, इनमें सम सुरत सदैव सुख साध्य माना गया है[१] ॥ १२ ॥

---

१. ये नौ प्रभेद साधन और प्रमाण को लेकर हैं परन्तु काल और वेग के आधार पर भी यदि इन्हें देखें तो प्रत्येक के भी नौ भेद हो सकते हैं।

अन्तर्लिङ्गास्पर्शान्नीचे कण्डूतिरप्रतीकारा।
उच्चे मृदुगुह्यान्तःसंपीडा सव्यथं हृदयम् ॥ १३ ॥

नीचे नीचरते, अन्तर्मध्ये, लिंगास्पर्शात् लिंगस्य अस्पर्शात्। कण्डूतिः, अप्रतिकारा न गच्छ(ती)त्यर्थः। उच्चे उच्चरते, मृदुकोमलगुह्यान्तर्योन्यन्तः, संपीडा, सव्यथं हृदयं भवति। तेन समानसुरते(तं ?) सुखदमित्यर्थः ॥ १३ ॥

नीचरत में गुह्य के अन्तिम भाग तक लिंग का स्पर्श या प्रवेश न जाने के कारण स्त्री की कण्डुति समाप्त नहीं होती है, परन्तु उच्चरति की स्थिति में गुह्यभाग में अन्तर्पीड़ा रहने से हृदय में व्यथा बनी रहती है ॥१३ ॥

मृदुमध्योत्तमशक्तय इह सूक्ष्मा रक्तजाः क्रिमयः।
स्मरसद्मसु कण्डूतिं जनयन्ति यथाबलं स्त्रीणाम् ॥ १४ ॥

रक्तजाः क्रिमयः मृदुमध्यमउत्तमबलाः, स्त्रीणां स्मरसद्मसु भगेषु, यथाबलं, कण्डूतिं जनयन्ति[१] ॥ १४ ॥

क्योंकि मृदु, मध्य तथा उत्तम रतिशक्ति के उपपादक तथा स्खलन में उत्पन्न होने वाले जो सूक्ष्म कृमि हैं वे ही अपनी शक्ति के अनुसार युवती नारी के गुह्यभाग में कण्डुति को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ १४ ॥

कण्डूत्यपनपनपटोः कान्ताच्युतिशर्महेतुभूतस्य।
प्राणेश्वरस्य दयिता सहते न मुहूर्तविच्छेदम् ॥ १५ ॥

दयिता स्त्री, कण्डूत्यपनयनपटोः कण्डूतिदूरीकरणसमर्थयस्य प्राणेश्वरस्य, मुहूर्तमपि विशे(श्ले ?)षं न सहते, कथंभूतस्य ? कान्तायाश्च्युतिः च्यवनं (तेन ?) जनितं, शर्म्म सुखं, तस्य हेतुभूतस्य कारणस्य ॥ १५ ॥

और युवती स्त्री इसी कारण इस कण्डुति को दूर करने में दक्ष अपने स्वामी का इसी कारण एक क्षण के लिये भी विश्लेष नहीं चाहती क्योंकि वही इस रति कार्य में सुख तथा च्युति का उत्पादन करने में सक्षम होता है (या उसका निमित्त है) ॥ १५ ॥

दैवेन यदि कदाचित् कथमपि जायते तस्य विच्छेदः।
सहसैव सा वराकी यायाद्दशमीं मनोभवावस्थाम् ॥ १६ ॥

---

१. यहां एक शास्त्रीय तथ्य यह भी है कि समरत भी उत्तम, मध्यम, और अधम रूप में होने से तीन विभेद रखता है। इनमें जब चिन्ह प्रमाण तथा वेग में समानता रहे तो उसे उत्तम समरत स्थिति मानी जाए तथा दो ही हो तो मध्यम तथा मात्र एक वैशिष्ट रहे तो अधम समरत स्थिति समझना चाहिये।

यदि कदाचित् दैवेन कथमपि तस्य विच्छेदः जायेत, तदा सा वराकी, दशमीं मनोभवावस्थां यायात् ॥ १६ ॥

. यदि परिस्थिति या दुर्भाग्यवश कभी ऐसे पति से विच्छेद हो जाता है तो असहाय नायिका की दश कामगत अवस्थाएं स्थिति के कारण हो जाती हैं ॥ १६ ॥

अभिलाषस्तथा चिन्ताऽनुस्मृतिर्गुणकीर्तनम् ।
उद्वेगश्च विलापोऽथोन्मादो व्याधिस्तथाऽष्टमः ॥ १७ ॥
जडता मरणं चेति दशावस्थाः प्रकीर्तिताः ।
प्रमदानां नराणाञ्च स्मरेषूद्भिन्नचेतसाम् ॥ १८ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे (रतिविवेको) नाम चतुर्दशः परिच्छेदः ॥]

स्मरेषूद्भिन्नचेतसां कामग्र(स्त)मानसानां, प्रमदानां, नारीणां पुरुषाणां च, अवस्थाः दश प्रकीर्तिताः । अभिलाषः १, चिन्ता२, अनुस्मृतिः ३, स्मरणं ४, गुणकीर्तनम् ५, उद्वेग ६, विलापः ७, उन्माद ८, व्याधि ९, जडता १०,मरण ॥१७-१८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीजगज्ज्योतिर्म्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां रतिविवेको नामाष्टमः परिच्छेदः ॥

काम-दशा से विद्ध चित्त वाली युवति नायिकाओं तथः युवक नायकों की ऐसी स्थिति में दस कामदशा या अवस्थाएं होती हैं। ये हैं—(१) अभिलाष, (२) चिन्ता, (३) अनुस्मृति (४) गुणकीर्तन, (५) उद्वेग, (६) विलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता तथा (१०) मृति ॥ १७-१८ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में रतिविवेक नामक चतुर्दश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—o—

प्रथममपररामा इङ्गितैर्लक्षणीयाः
स्वयमथ सुहृदा वा यत्नसाध्या असाध्याः ।
सकृदपि न च साध्या क्षेमकामैरसाध्या
यदिह विपदसाध्यासाधने दुर्निवारा ॥ १ ॥

प्रथमं, अपररामा: परस्त्रिय:, इङ्गितै:, स्वयं अग्रसुहृदा वा, यत्नसाध्या असाध्या: लक्षणीया: । सकृदपि न च साध्या यदि विपदि असाध्या, तदा साधने दुर्न्निवारा: सर्वदा असाध्येत्यर्थ: ॥ १ ॥

सर्वप्रथम अन्य या परकीया नायिका को उसकी चेष्टाएं और इंगित से लक्षित करना चाहिए जो या तो स्वयं ही या फिर उसकी सखियों या आत्मीयजन के द्वारा यह देखकर कि वह यत्नसाध्य है या कि असाध्य है। यदि विपत्तिग्रस्त हो तो एक बार भी साध्य स्थिति नहीं होगी अत: वह किसी भी साधन या कार्य या मुक्ति से साध्य नहीं होगी ॥१ ॥

प्रकाशो बाहुमूलस्य कक्षोदरकुचस्य च ।
बालानां चुम्बनालिङ्गे, कबरीमोक्षसंयमौ ॥ २ ॥
स्वाङ्गावयववस्त्राणां निरन्तरविलोकनम् ।
अश्रुपाताङ्गुलीमर्दौ, श्लेष्णोत्सर्गौ मुहुर्मुहु: ॥ ३ ॥
कान्तस्य गुणसौभाग्यसंक्रीडागुणसम्पदाम् ।
सङ्कीर्तने महोल्लासा:, साङ्गभङ्गं विजृम्भणम् ॥ ४ ॥
श्रुतिसद्माङ्गुलिक्षेप:, सस्मिते वचनेक्षणे ।
एतान्ययत्नसाध्यानामिङ्गितानि समुन्नयेत् ॥ ५ ॥

एतानि अयत्नसाध्यानां इङ्गितानि समुन्नयेत् जानीयात्, तदेवाह—बाहुमूलस्य प्रकाश:, कक्षाया उदरस्य कुचस्य त प्रकाश:, बालानां चुंबनालिंगौ चुंबनं च आलिंगनं च, कबरीमोक्षसंयमौ कबरी(र्या: ?) केशपाशस्य मोक्ष: संयमं च, स्वशरीरावयववस्त्राणां निरन्तरविलोकनं, अश्रुपात:, अंगुलीमर्द:, मुहुर्महु: श्लेष्मोत्सर्ग:, कान्तस्य पुरुषस्य रूपसौभाग्यसंक्रीडागुणसम्पदां संकीर्तने महोल्लासा:, साङ्गभङ्गं यथा स्यात् (तया) विजृम्मणं, श्रुतिसद्मनि अंगुलिक्षेप:, वचनेक्षणे सस्मिते सहास्ये ॥ २-३-४-५ ॥

इनमें जो युवती नायिका साध्य होती हो उनके लक्षणों को इस प्रकार जाना जाता है। बाहुमूल को उठाकर प्रकट करना जिससे कक्ष, उरोज तथा उदर की स्थिति दिखलाई दे जाए, अपने पास स्थित किसी छोटे बालक को प्रेम से चूमते हुए आलिंगन करना, बार-बार केशों के बांधने का छूटने पर कार्य करना, अपने शरीर पर धारण किये गये वस्त्रों को बार-बार देखते रहना, आंखों से बार-बार आंसुओं का पोंछते रहना तथा मुंह से थूक को छोड़ना, प्रिय के रूप सौभाग्य, क्रीड़ा आदि गुणों का बखान बार-बार करना तथा उससे प्रसन्नता प्रकट करना, अंगों को मरोड़कर जंभाई लेना, कानों को छूना तथा उसमें बार-बार

उंगली डालते रहना और हंसकर बातें करते हुए देखते रहना। ये अनुरक्ता की चेष्टाएं होती हैं ॥ २-५ ॥

सव्याधीर्ष्यालुकुव्यक्तिधनहीनप्रवासिनाम्।
स्त्रियो यात्रादिसंरक्तास्ताश्च साध्याः प्रकीर्तिताः ॥ ६ ॥

सव्याधी रोगी, ईर्ष्यालुः परपिशुनः, कुव्यक्तिः कुभव्यः, धनहीनो दरिद्रः, प्रवासिनां परदेशिनां स्त्रियः, याश्च यात्रादिसंरक्तास्ताः साध्याः कथिताः ॥ ६ ॥

ऐसी परकीय स्त्रियां साध्य होती हैं जिनके पति व्याधि से युक्त या रोगी हों, जिनका स्वभाव बार-बार चुगली लगाना रहे, जिनका पति दुर्व्यवहार करने वाला, कुत्सित व्यवहार रखने वाला, धनरहित या कंजूस स्वभाव वाला, दरिद्र तथा सदैव परदेश में प्रवास करने वाला हो, या जो स्त्री यात्रादि के करने में रुचि रखती रहे (तो वे भी साध्य मानी गई है)[१] ॥६ ॥

ह्रीभयालङ्कृताः कान्ता दुःखार्त्ता लोभवर्जिताः।
साध्यालिङ्गविपर्यस्ता असाध्यास्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥

ताः स्त्रियः असाध्याः—याः ह्रीभयालङ्कृताः लजाभयभूषणाः, दुःखार्त्ताः शोकार्त्ताः, स्वेदहीनाः, पूर्वोक्तसाध्याचिह्नरहिताः ॥ ७ ॥

ऐसी परस्त्रियां असाध्य होती हैं जिनकी लज्जा एवं भय करने की प्रवृत्ति हो, जो दुःख या शोक से ग्रस्त तथा लोभ रहित हों या पूर्वकथित साध्य लक्षणों से हीन हों ॥७ ॥

रजकी मालिनी धात्री योगिनी प्रतिवेशिनी।
सखी गोपालिका चेटी नापिती दूतिका मताः ॥ ८ ॥

अस्यार्थः सुगमः ॥ ८ ॥

प्रगल्भा युवती दक्षा परिज्ञातपरेङ्गिता।
दूती नियोज्यते कार्ये वक्रभाषितभूषिता ॥ ९ ॥

---

१. यहां शास्त्रकार का उद्देश्य साध्यासाध्य नायिका को समझकर सावधान बन तथा पत्नी की कुलीनता का रक्षण कर अपने में अनुरक्ति की भी दृढ़ता बना कर रखे और परकीया स्त्री में अनुराग देखने पर विचार कर उनका सेवन भी करे यदि वे साध्या हों। इसी कारण यहां स्वदार की पतन से रक्षा, स्त्री की चेष्टाओं का ज्ञान तथा स्त्रियों के पतनादि के कारणों का विवेचन कर उन्हें यहाँ विस्तार से बतलाया गया है।

एतादृशी दूती कार्ये नियोज्यते, प्रगल्भा, युवती, दक्षा कार्यसमर्था, परिज्ञातः परस्य इङ्गितो यथा सा, वक्रभाषितभूषिता वक्रोक्तवादिनी ॥ ९ ॥

दूति कार्य में नियुक्ति के योग्य स्त्रियों में रजकी (धोबिन), मालन, धाय (या उसकी पुत्री भी) योगिनी या सन्यासिनी स्त्री, पडौसन, सखी, ग्वालिन, चेटी तथा नाईन स्त्री होती है जिनसे दूती का कार्य सम्भव या सम्पन्न होता है, क्योंकि जो स्त्री युवती, प्रगल्भ वाणी वाणी, चतुर तथा मनोभावों तथा दूसरों के इंगित को समझने वाली होती हैं, तथा दूसरों को वक्तोक्ति कहने में चतुर हो तो इन्हें दूती के योग्य माना गया है[१] ॥ ८-९ ॥

प्रतिपदमदनप्रदीपकैस्तैर्मृदुवचनैर्युवती तयाऽभिधेया ।
कुसुमशररुजा विकीर्णधैर्या द्रुतमनुयास्यति यैः सुतेव दूतीम् ॥ १० ॥

तया दूत्या युवती एतैः मृदुवचनैः अभिधेया कथनीया, किंभूतैः? प्रतिपदमदनप्रदीपकैः पदंपदं प्रति कामप्रबोधकैः, कथंभूता युवती ? कुसुमशररुजा कामव्याधिना गतधैर्या, यैः वचनैः दूतीं सुता कन्या इव, द्रुतं शीघ्रं, अनुयास्यति अनुगच्छेत् ॥१० ॥

ऐसी गुणशाली दूती के द्वारा उस युवती नायिका को अपनी बात मधुर वचनों में जिनसे प्रत्येक शब्द में नायक का कामभाव एवं वर्धन प्रकट हो रहा हो तथा नायक की कामव्यथा ऐसी प्रभावपूर्ण दशा में बतलायी जाना चाहिये कि युवती नायिका अपना धैर्य छोड़कर एक पुत्री की तरह अनुत होकर आज्ञापालन एवं अनुरोध को मानकर शीघ्रता से उसके साथ साथ आ जाये ॥ १० ॥

सप्रेमदानैर्मधुरैर्वचोभिः
संरक्षितव्याः सततं युवत्यः ।
अरक्षिता ह्यात्मपतित्रिवर्ग-
नाशं करोत्यन्यजनानुरागात् ॥ ११ ॥

सप्रेमदानैः मधुरैः वचोभिः, सततं निरन्तरम्, रक्षितव्याः युवभ्यः रक्षाकर्तव्याः । अरक्षिताश्चेत्, आत्मपतिः स्वस्वामी, त्रिवर्गः धर्मार्थकामाः, तेषां नाशं करोति, अन्यजनानुरागाः अन्यजने परपुरुषे अनुरागाः ॥ ११ ॥

---

१. इन स्त्रियों की दूती कर्म में उपयुक्तता का कारण इन स्त्रियों द्वारा अपने कार्य तथा स्वभावादि के कारण प्रायः अन्तःपुर आदि सभी स्थानों पर आने जाने का कार्य बिना किसी प्रतिषेधादि के रहता है । इसलिये इन्हें गम्भीर तथा गोपनीय कार्य भी सुपुर्द कर देना किसी भी अनपेक्षित आशंका से रहित होता है ।

इसलिये युवा पति के द्वारा अपनी युवती पत्नी को प्रेम प्रदान कर उनके साथ मधुर वचनों के साथ व्यवहार के द्वारा उनकी सभी ओर से रक्षा करना चाहिये क्योंकि यदि वे अरक्षित स्थिति में होंगी तो अपने पति को दूसरे मनुष्य के साथ किये गये अनुराग तथा सम्पर्क को करती हुई त्रिवर्ग सेवन के जीवनक्रम से गिरा कर उसका पतन कर देंगी ॥११॥

उद्यानतीर्थनटयुद्धसमुत्सवेषु
यात्रादिदेवकुलबन्धुनिकेतनेषु।
क्षेत्रेष्वशिष्टयुवतीरतिसङ्गमेषु
नित्यं सता स्ववनिता परिरक्षणीया ॥ १२ ॥

एषु स्थानेषु स्ववनिता नित्यं रक्षणीया: मता:, उद्यानतीर्थनटयुद्धसमुत्सवेषु यात्रादिदेवकुलबन्धुनिकेतनेषु, गृहेषु अशिष्टयुवतीरतिसंगमेषु खेलनेषु ॥ १२ ॥

अतएव अपनी गृह पत्नी को सदैव ऐसे स्थानों से तथा परिचय, मैत्री आदि से दूर रख रोककर रखने में ही रक्षा मान कर अपनी जीवनचर्या रखना चाहिये। उन्हें किसी एकान्त उपवन में, तीर्थस्थान या जीर्ण मन्दिरों पर यात्रा करने, किन्हीं नटों के प्रदर्शन, युद्ध या किन्हीं सार्वजनिक उत्सवों में जाने, यात्रा, देवदर्शन तथा सम्बन्धीजन के घर होने वाले उत्सवादि कार्यों में सम्मिलित होने या ऐसे स्थान जहां अशिष्ट स्त्रीजन एकत्र हो या मिलती हों या वे किसी पुरुष से रति करती हो तो ऐसे सभी प्रसंगों में घर की अपनी स्त्रियों को नहीं जाने देना चाहिये।

तारुण्यमोहमदस्वजनोपरोधै-
र्धर्मार्थकामकुतुकोत्सुकसुप्रभावैः।
दूत्याऽभिनन्दितविचित्ररताश्रयेण
नार्यो भवन्त्यगणितार्यकुलोपचाराः ॥ १३ ॥

नार्यः एभिरगणितार्यकुलोपचारा भवन्ति—आर्यं कुलं आर्यकुलं, आर्यकुलस्य उपचारो व्यवहारः अगणितः आर्यकुलोपचारो याभिः तास्तथा। एभिः कैः कैः ? तारुण्यं यौवनं, ततः मोहं(हः) अज्ञानं, मदनः, कामः, स्वजनोपरोधः स्वजनाग्रहः, तैः, धर्मार्थकामकौतुके उत्सुका एतेषां प्रभावैः, दूत्या अभिनन्दितविचित्ररताश्च ॥ १३ ॥

क्योंकि कुलीन स्त्रियां भी कभी-कभी अपने उत्तम कुलों की मर्यादा को छोड़कर बिगड़ जाती हैं जिनके कारण युवती की युवावस्था में मोह या अज्ञान का होना, अपने ही

घर के व्यक्ति का अनुरोध होना धर्म, अर्थ या काम के सेवन में उत्कंठा रखने से तथा दूती आदि से प्रशंसित विभिन्न रतिकर्म तथा सुखों के वर्णनों से प्रभावित तथा प्रेरित होना होता है ॥ १३ ॥

चेष्टां विचार्य निभृतं निजसुन्दरीणां
रूपोत्तमान्यनरलोचनगोचरेषु ।
यस्या न सन्ति सुतरां कथितेङ्गितानि
कान्तासु सैव गृहिणी बहुमाननीया ॥ १४ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे परस्त्रीसाधनं स्वदाररक्षा नाम पञ्चदशः परिच्छेदः ॥]

पुरुष निजसुन्दरीणां चेष्टां विचार्य, रूपोत्तमान्यनरलोचनगोचरेषु सुन्दरमेव पुरुषनयनविषयेषु, यस्याः कथितेङ्गितानि न सन्ति, कान्तासु स्त्रीषु, सैव गृहिणी बहु यथा स्यात्तथैव माननीया ॥१४ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्वटीकायां खदाररक्षणे नाम नवमः परिच्छेदः ॥

अतएव योग्य एवं चतुर मनुष्य को अपनी प्रिय युवती एवं सुन्दरी पत्नी आदि की चेष्टाओं पर विचार कर अन्यों के उत्तम रूप तथा नेत्रों के लक्ष्य में न आने वाली तथा उनके प्रति इंगित तथा चेष्टाओं को न प्रकट करने वाली शुद्ध मनोभाव वाली स्त्रीजन होती हैं वे ही उत्तम गृहिणी हैं तथा उनका ही सदैव सम्मान करते रहना उचित होता है ॥ १४ ॥

(पण्डित पद्मश्री रचित नागरसर्वस्व में अन्य स्त्री साधन तथा स्वदार परिरक्षण नामक पञ्चदश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—o—

सेवनं योषितां कुर्याद् बुद्ध्वा पथ्यक्रमं बुधः ।
बालायोग्याभिरूढानामृतुयोगविभागतः ॥ १ ॥

बुधः पण्डितः, ऋतुभोगविभागतः । बालायोग्याभिरूढानां पथ्यक्रमं बुद्ध्वा योषितां सेवनं कुर्यात् । योग्या तरुणी । अभिरूढा प्रौढा ॥ २ ॥

बुद्धिमान् तथा विवेकी पुरुष अपनी इष्ट वयवाली बाला, तरुणी तथा अभिरूढा या प्रौढ़वय की स्त्री का सेवन पथ्यों के अनुरूप ऋतु, योग या साधन, पदार्थ तथा समय के विभाजन आदि को ध्यान में रख कर सम्पन्न करे[१] ॥ १ ॥

बालेति गीयते नारी यावच्छोडशवत्सरम्।
ततः परं च तरुणी सा यावत् त्रिंशतं भवेत्॥ २॥

तदूर्ध्वमभिरूढा स्याद्यावत् पञ्चाशतं पुनः।
वृद्धा ततः परं ज्ञेया सुरतोत्सववर्जिता॥ ३॥

यावत् षोडशवत्सरं तावत् बाला इति गीयते; ततः परं यावत्त्रिंशतं व्याप्य तरुणी, तदूर्ध्वं, तत्पश्चात्, यावत् पंचाशतं व्याप्य, अभिरूढा प्रौढा स्यात्; ततः परं वृद्धा ज्ञेया, किं भूता वृद्धा? सुरतोत्सववर्जिता ॥ ३ ॥

इन स्त्रियों में अवस्था के अनुसार सोलह वर्ष की वय तक की स्त्री को बाला कहा जाता है, इसके बाद तीस वर्ष की अवस्था तक की तरुणी या युवती कहलाती है, इसके बाद पचास वर्ष तक की स्त्री अभिरूढ़ा या प्रौढ़ा कहलाती है, तथा इस वय से आगे वय की स्त्री को "वृद्धा" कहते हैं। वृद्धा स्त्री सुरत सेवन के आनन्द से दूर रहती या मानी जाती है ॥ २-३ ॥

निदाघशरदोर्बाला पथ्या विषयिणां भवेत्।
हेमन्ते शिशिरे योग्या, प्रौढा वर्षावसन्तयोः॥ ४॥

विषयिनां(णां) भोगिनाम्। योग्या तरुणी। अन्यत्सुगमम्॥ ४॥

कामीजन द्वारा ग्रीष्म तथा शरद ऋतु में बाला का सेवन पथ्यदायी होता है, तथा तरूणी का हेमन्त और शिशिर ऋतु में। परन्तु वर्षा और वसन्त ऋतु में प्रौढ़ा या अभिरूढा स्त्री पथ्य मानी जाती है॥ ४॥

सततं सेव्यमानाऽपि बाला वर्धयते बलम्।
क्षयं (क्षेमं ?) नयति योग्या स्त्री, प्रौढा तु कुरुते जराम्॥ ५॥

---

१. जैसे फल आदि पदार्थों में उनके पाक आदि की स्थिति के कारण भिन्नता आ जाती है उसी तरह वय तथा परिणाम आदि की भिन्नता से सेवन में भी विभेद होजा है। इसी कारण वय, रूप, प्रकृति आदि के विभागों तथा उनके धर्मों की व्यवस्था भी रखी जाती है। इन सभी को विभागानुसार व्यवस्था से इस परिच्छेद में रखा गया है, तथा उनका उपयुक्त शास्त्रीय निरूपण भी रखा गया है।

सततं निरन्तरं, सेव्यमानाऽपि बाला बलं वर्धयते। योग्या तरुणी स्त्री क्षयं नयति क्षीणं कुरुते, प्रौढा स्त्री जरां वार्धक्यं कुरुते ॥ ५ ॥

विशेषमाह महेश्वरः—

अलोमकाः सतिलका नित्यं सेव्यास्तु योनयः ।
अलोमकत्वं कक्षेण, मुखेन ज्ञायते तिलः ॥ ६ ॥

अलोमकाः लोमवर्जिताः, योनयः नित्यं सेव्याः सोवनयोग्याः। कक्षेण अलोमत्वं ज्ञायते, मुखेन तिलं(लः) ज्ञायते ॥ ६ ॥

निरन्तर सेवन करने पर भी बाला नायिका सदैव बल वृद्धि करने वाली होती है, युवती स्त्री योग्या रहने पर भी बल वृद्धि नहीं करती, प्रौढ़ा नायिका के सेवन से वृद्धत्व की प्राप्ति होती है। इस विषय में महेश्वर का [१] मत विशेषरूप से दृष्टव्य है—इन नायिकाओं में जिनके रोमहीन गुह्य योनि प्रदेश है उनका सेवन सदैव उपयुक्त है। इनके रोमहीनता कक्ष के रोमहीन रहने से पता लग जाता है जैसे तिलक के गुह्यांग पर रहने से सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार उनकी भाग्यवत्ता तथा श्रेष्ठता का ज्ञान हो जाता है ॥ ५-६ ॥

आसीने लालयेद्बालां, तरुणीं शयने तथा।
उत्थिते चाभिरुढां तु, लालनं त्रिविधं मतम् ॥ ७ ॥

त्रिविधं लालनं मतं, आसीने बालां लालयेत्, शयने तरुणीं, उत्थितेऽभिरूढां प्रौढां लालयेत् ॥ ७ ॥

इनके लालन की स्थितियां तीन प्रकार की मानी जाती हैं, जिनमें बाला नायिका को अंक में आसीन रखकर आलिंगन आदि बाह्यरत से लालित करना होता है, युवती स्त्री नायिका को शयन करवा कर रतविधान के द्वारा लालन करना इष्ट रहता है, परन्तु आसन

---

१. आचार्य "महेश्वर" "स्मरदीपिका" के रचयिता रूद्र प्रतीत होते हैं। परन्तु इनके ग्रन्थ में "अरोमका" इत्यादि कारिका नहीं है। (इसके लिये प्रस्तावना दृष्टव्य) परन्तु सामुद्रिकशास्त्र में यद्यपि—"रोमशो विवृतास्यश्च दृश्यनासोऽतिदुर्भगः" कहकर इसे विद्रूप माना है, फिर भी सामुद्रिक लक्ष्य में " सतिलका" विशेषण से ऐसी स्त्री की भाग्यवत्ता भी संकेतित है। यथा—"गुह्यस्य दक्षिणे भागे तिलकं यदि योषितः। तदा क्षितिपतेः पत्नी"। इसी तरह मुख पर भी उचित स्थान पर तिलक का होता संवर्धक है। तिल का रहना भाग्यवत्ता के साथ सौंदर्य का भी संवद्धिक रहता है।

तथा शयन के अतिरिक्त हास्यालाप जैसे कार्यों की भिन्न विधियों से प्रौढ़ा प्रिया का लालन करना चाहिए[1] ॥७ ॥

मोहनं नारभेत्तावद्यावन्नोत्कण्ठिता प्रिया ।
अन्यथा तत्सुखोच्छित्तिकशीतेऽर्ककरादिव ॥ ८ ॥

मोहनं तावत् न आरभेत् यावत् प्रिया उत्कण्ठिता न, अन्यथा तत्सुखोच्छित्तिः प्रियासुखभंगः । तत्र दृष्टान्तमाह, अशीते उष्णकाले, अर्ककरादिव रविकिरणादिव ॥ ८ ॥

प्रिया के बिना उत्कण्ठा के उनका मोहन कार्य या संभोग कर्म आरम्भ नहीं किया जाता है अन्यथा उनकी सुख प्राप्ति में विघ्न या विच्छिन्नता आ जाती है जैसे ग्रीष्मकाल में सूर्य की किरणों से प्राप्त उष्णता से व्यथा ही बढ़ती है ॥ ८ ॥

नाभिहृत्कण्ठदेशेषु दधत् श्वासं च यः क्रमात् ।
कामोऽहं भावयेत् कामी गायत्रीं सप्तधा जपेत् ॥ ९ ॥

सः यः पुरुषः नाभिहृत्कण्ठदेशेषु श्वासं दधत् कामः इति भावयेत्, गायत्रीं सप्तधा जपेत् ॥ ९ ॥

गायत्री यथा—ऊँ नमो मनोभवाय विद्महे कन्दर्पाय धीमहि तन्नः कामः प्रचोदयात् ॥ १० ॥

वह कामेच्छु नायक अपने नाभि[2] हृदय तथा कण्ठ प्रदेश में स्थित श्वास रूप प्राण वायु को धारण कर स्वयं की कामरूप में भावना कर कामगायत्री का सात बार जप करे। यह गायत्री मंत्र है—ऊँ नमो मनोभवाय विद्महे। कन्दर्पाय धीमहि। तन्नः कामः प्रचोदयात् ॥ ९-१० ॥

व्याजेन चुम्बनादीनामुच्छ्वासं पाययेत् प्रियाम् ।
तेन सा वशमायाति न तस्यास्तु स्वयं पिबेत् ॥ ११ ॥

यः पुरुषः व्याजेन प्रियां चुम्बनात् ईषत् श्वासं पाययेन्, तेन सा स्त्री वशं आयाति, तस्याः स्त्रियाः स्वयं न पिबेत् ॥ ११ ॥

---

१. लालन का अर्थ है उनसे प्रेम, प्रीति या सेवन की स्थिति को रखना। जैसे कि स्मरदीपिका में—"फलताम्बुलवासोभिर्बाला वश्या भवेन्नु। विविधाभरणैस्नेहैस्तरुणी वशवर्तिनी। गाड़ालिङ्गनचुम्बनैश्चाभिरूढास्तु योषित। गौरवैः मधुरालापैहरेद् वृद्धां प्रियम्वदः।" कहकर इसी तथ्य को संकेतित किया है।
२. इष्ट स्त्रियों के वशीकार को उपाय के साथ यहां नाभिहृत्कण्ठ इत्यादि तीन कारिकाओं में निरूपित किया है।

सम्भोगकाल के बीच चुम्बनादि के व्याज से उसी प्रिया युवती को अपने श्वास भी मुखचुम्बनादि के साथ पान करवाना चाहिये। ऐसा करने पर ही युवती वश में आ जाती है, परन्तु भोग्य उसी प्रिया स्त्री के श्वासों को अपने में न आने दिया जाए (क्योंकि ऐसा करने पर स्वयं भी उसके वश में हो सकता है)॥ ११ ॥

सीत्कारश्च हकारश्च श्वसितञ्च त्रपाक्षयम्।
प्रस्विन्नवदनं चैव विकारोऽथ भगस्य च ॥ १२ ॥

बुद्ध्वा चैतानि लिङ्गानि प्रियायाः सुतरां बुधः।
तया तुल्यसुखं चैतदात्मरागं समारभेत् ॥ १३ ॥

बुधः पण्डितः, सुतरां अत्यर्थेन, प्रियायाः एतानि लिङ्गानि बुद्ध्वा, तया समं, तुल्यसुखं च एतदात्मरागं समारभेत् ॥ १२-१३ ॥

इस सेवन काल में उसी प्रिया युवती के सीत्कार, हुंङ्कार, (जोरों से) सांस के लेने, लज्जा को सर्वथा छोड़ने तथा मुख पर पसीना आ जाने के साथ योनिगत कण्डूति के अधिक आ जाने के चिन्हों को ठीक से समझकर उसके अनुरूप ही उपभोग कार्य को रखकर आत्मसुख को प्राप्त रखते हुए सम्भोग कार्य को रखना चाहिए ॥ १२-१३ ॥

सुन्दर्यामनिशं यस्यां रमते चित्तमात्मनः।
सैवेयं भावनीया स्यायदात्मरागसमुद्भवः ॥ १४ ॥

यस्यां सुन्दर्यामनिशं बारंबारं, आत्मरागसमुद्भवः, आत्मनः चित्तं रमते, सा इयं भावनीया स्यात् ॥ १४ ॥

अत्राह महेश्वरः—

एवं संचोदिता नारी नान्यमिच्छति मानवम्।
क्लीबोऽपि हृदयं तस्याः प्राप्तोत्येव न संशयः ॥ १५ ॥

एवं अनेन प्रकारेण, संचोदिता नारी स्त्री, अन्यं मानवं पुरुषं न इच्छति। तस्याः स्त्रियाः हृदयं क्लीबोऽपि नपुंसकोऽपि पुरुषः प्राप्नोति, संशयो न ॥ १५ ॥

अतएव जिस युवती प्रिया में स्वयं का चित्त रमे इसी की अपने अनुराग को उत्पन्न रखने की क्षमता समझकर सदैव उसी की भावना रखे तथा उसी पर अनुराग तथा उपभोग क्रिया को निरन्तर रखे। इसी को महेश्वर देव ने भी समर्थित कर बतलाया कि यदि इसी[१]

१. इसी प्रकार अर्थात् नवम पद्य से लेकर आगे १५ पद्यों तक। संचोदिता पद का अर्थ है उपभोग किया गया तो।

विधि से किसी युवती सुन्दरी का सेवन कर व्यवहारिक जीवन क्रम को रखा जाए तो ऐसी स्थिति में युवती स्त्री का मन किसी दूसरे की कामना नहीं करता है तथा ऐसा व्यवहार कर नायिका सुन्दरी का मन सदैव अपनी ओर एक क्लीव पुरुष भी बना कर स्थिर रख सकता है ॥१४-१५ ॥

इति नरैर्विधिना परिसेविता
परमशर्म समेत्य नितम्बिनी ।
तृणवदूर्ज्जितजीवितनिस्पृहा
त्यजति याम्यपुरेऽपि न वल्लभम् ॥ १६ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे बालादिपथ्यक्रमलालनं नाम षोडशः परिच्छेदः ॥]

इति अनेन प्रकारेण, विप्रवरैः उपसेविताः नितम्बिनी, याम्यपुरे यमपुरेऽपि, वल्लभं पुरुषं न त्यजति, किं कृत्वा ? परमशर्म सुखं, समेत्य प्राप्य, किंभूता स्त्री ? तृणवत्, उर्ज्जिते जीवितेऽपि, निस्पृहा ॥ १६ ॥

[इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां बालादिपथ्यक्रमलालनो नाम दशमः परिच्छेदः ॥]

अतः यदि इसी प्रकार के निर्दिष्ट विधान से यदि विवेकशील पुरुष के द्वारा उपयुक्त रूप में अपनी इष्ट प्रिया को परम सुख प्राप्त करवाते हुए सेवित किया जाता है तो फिर वह अपने जीवन में अन्य जन की स्पृहा से विरत होकर ऐसे वल्लभ को यमपुर[1] में भी छोड़ना नहीं चाहेगी ॥ १६ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में बालादि विविध नायिकाओं के पथ्यक्रम तथा लालनादि का निर्दशक षोडश परिच्छेद सम्पूर्ण ।)

पादाग्रजङ्घोरुषु योनिनाभि-
कुक्षौ कुचे हस्ततले गले च ।
ओष्ठे कपोले नयने श्रुतौ च
शीर्षे तथा सर्वशरीरदेशे ॥ १ ॥

---

१. याम्यपुर—परलोक में या मृत्यु के उपरान्त यमलोक में । याम्य पद का अर्थ विष्णु या शिव लिया जाए तो विष्णु के लोक बैकुण्ठ अथवा शिवलोक कैलास भी अर्थ होगा ।

स्थानेषु चैतेषु तिथिक्रमेण
नितम्बिनीनां समुदेति कामः।
वामाङ्गभागोपरि शुक्लपक्षे
कृष्णे च सव्यावयवे तथैव॥ २॥

नितम्बिनीनां स्त्रीणां, एतेषु स्थानेषु, तिथिक्रमेण, कामः समुदेति। शुक्लपक्षे वामाङ्गभागं व्याप्य समुदेति, कृष्णपक्षे सव्यावयवे दक्षिणअवयवे समुदेति। तत्किं? तदेवाह—पादाग्रे, जंघायां, ऊरो, योनौ, नाभौ, कुक्षौ, कुचे, हस्ततले, गले, ओष्ठे, कपाले, नयने, श्रुतौ, शीर्षे, सर्वाङ्गशरीरदेशे इति॥ १-२॥

युवतीस्त्रीजन में [1]तिथि के अनुसार क्रमशः काम की उत्पत्ति मानी गई है। इनमें शुक्ल पक्ष में वाम अंग को व्याक्ष कर तथा कृष्ण पक्ष में दक्षिणांग को व्याप्त कर यह क्रम रहता है। इनमें क्रमशः पादाग्र में, जंघा में, उरस्थल में, योनि में, नाभि में, कुक्षि में, उरोज में, हस्ततल में, गले में, ओष्ठ में, नयन में, कर्ण में, शीर्ष में तथा समग्र शरीर में काम स्थित रहता या उदित होता है॥ १-२॥

अङ्गुष्ठमूलात्प्रभृति क्रमेण
यावच्छिखामूलमुपैति कामः।
कृष्णे तु पक्षे चरणाग्रदेशं
प्रयाति नित्यं शिरसस्तथैव॥ ३॥

कृष्णे पक्षे, अंगुष्ठमूलात्प्रभृति, क्रमेण, यावच्छिखामूलं, कामः उपैति प्राप्नोति। तथैव शुक्लपक्षे, शिरसः शीर्षादारभ्य चरणाग्रदेशं, नित्यं कामः प्रयाति गच्छति॥ ३॥

कृष्ण पक्ष में क्रमशः अंगुष्ठ के मूलभाग से प्रारंभ होकर क्रमशः शिखामूल कर काम उदित या प्राप्त रहता है। इसी तरह शुक्ल पक्ष में शिरस्थान से लेकर चरणाग्र प्रदेश तक नित्य ही काम गतिशील रहता है॥३॥

---

१. यहां प्रथम तीन कारिकाओं के द्वारा कामोदय के प्रदेशों में चन्द्रकला के स्थान नाम आदि यहां दिखलाया है। तिथि की संख्या के आधार पर ये पंचदश स्थान होते हैं। इनके विवरण अन्य कामशास्त्रीय ग्रन्थों में भी मिलते हैं जिन्हें अनावश्यक विस्तार के कारण यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इन्हें पचसायक या अनङ्गरङ्ग तथा अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों से उपयुक्त स्थान पर देखा जा सकता है।

अङ्गुष्ठमूलेषु अ, आ च जङ्घा-
युगे, इ ऊरावपि, ई च योनौ।
नाभ्यां उ, ऊ कुक्षतटे ऋ,
करे तथा ॠ, लृ च कण्ठदेशे ॥ ४ ॥
लॄ चाधरे, ए सततं कपोले,
नेत्रे च ऐ, कर्णयुगे तथा ओ।
शिखाश्रये औ कथितो रतज्ञैः,
सर्वाङ्गदेशे च सदैव अं अः ॥ ५ ॥
सर्वाङ्गदेशे मदनस्य बीज-
मिष्टाक्षरं सेन्दु सबिन्दुशीर्षम्।
बीजं शरच्चन्द्रकलावदातं
संचोदयेत्सूर्यनिभं प्रदीप्तम् ॥ ६ ॥

एतेषु स्थानेषु मदनस्य बीजं सेन्दु सबिन्दुशीर्षं न्यस्ताक्षरं, बीजं कथंभूतः(तं)? शरच्चन्द्रकलावदातं श्वेतं, सूर्यनिभं प्रदीप्तं, संचोदयेत्।। ४-५-६ ॥

इन स्थानों पर काम का बीज इंदु सहित बिन्दुशीर्ष के साथ स्वर मातृका न्यास के प्रभेदों के साथ फलसहित बतलाया गया है। जैसे अंगुष्ठ मूल में "अ" को, जंघायुगल में "आ" को, उरःस्थल में "ई" को, योनिप्रदेश में "ई" को, नाभि, में "उ" को, कक्षतट में "ऊ" को कुच में "ऋ" को, हाथ में (तल में) "ॠ" को कण्ठदेश में "लृ" को, अधर में "लॄ" को, कपोल में "ए" को, नेत्र प्रदेश में "ऐ" को, कर्णदेश में "ओ" को, शिखा प्रदेश में "औ" को तथा सर्वांग देश में "अं, अः" को स्थापित करना (बतलाया गया है)। यह बीज शरदकालीन चन्द्र की कला के समान श्वेत तथा प्रकाशमय स्वरूप वाला होकर स्थित होता है, जिससे प्रेरणा की प्राप्ति होती है ॥ ४-६ ॥

विभावयेत्तद्दयिताशरीरे
ततो निरुन्मेषविलोचनायाः।
(नितान्तनिःस्यन्दितनोः प्रियायाः)
विहाय बाह्यान् विभवान् भवेयुः ॥ ७ ॥
मु(सु ?) खे निलीनानि षडिन्द्रियाणि
(तृप्तानि सर्वाणि भवन्ति तन्व्याः) ॥ (७) ॥

दयिताशरीरे तन्मन्त्रं विभावयेत्। ततस्तदनन्तरं, निरुन्मेषविलोचनायाः कामिन्याः, बाह्यान् विभवान् विहाय, सुखे षडिन्द्रियाणि निलीनानि भवेयुः ॥ ७ ॥

तथा चाह महेश्वरः—

इति चिन्तितमात्रेण स्त्रीणां तृप्तिः प्रजायते ।
विनाऽपि योनिलिङ्गाभ्यां संसर्गेण वरानने ॥ ८ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे मदनोदयो नाम सप्तदशः परिच्छेदः ॥]

इति अनेन प्रकारेण, हे वरानने, योनिलिङ्गाभ्यां विनाऽपि चिन्तितमात्रेण संसर्गेण, स्त्रीणां तृप्तिः प्रजायते ॥ ८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां मदनोदयो नामैकादशः परिच्छेदः ॥

दयिता स्त्री के शरीर पर इन मंत्रों की स्थापना की भावना करें, इससे प्रभाव प्राप्त कर वह युवती अपने नेत्र को बन्द कर लेती है, तथा उसका शरीर स्पन्दन रहित एवं शिथिल पड़ जाता है, तथा उसे बाह्य विषय एवं जगत् का भान नहीं रहता तथा उसी सुख में ही उसके वही इन्द्रिय सुख लय प्राप्त कर लेते हैं। अतएव महेश्वर देव ने आगे ऐसा बतलाया कि इस विधि से जब मन्त्रादि की स्थापना से काम के हो जाने पर केवल रतिसुख की चिन्तन मात्र की कल्पना से ही उसे अभीष्ट सुख एवं तृप्ति की उपलब्धि हो जाती है, तथा कभी-कभी शरीर विधि में योनिलिंग स्पर्श की भी आवश्यकता नहीं पड़ती ॥ ७-८ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में मदनोदय नामक सप्तदश परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ)

—०—

मुखं चतुर्विंशतिनाडिकानां
मदावहानां मदनातपत्रम् ।
नारीवराङ्गोदरमध्यवर्ति
प्रचोदयेत्र्यक्षरबीजयुक्तम् ॥ १ ॥

चतुर्विंशतिनाडिकानि मदावहां(हानां) मदनातपत्रं मुखं, त्र्यक्षरबीजयुक्तं नारीवराङ्गोदरमध्यवर्ति, प्रचोदयेत् प्रेरयेत् ॥१ ॥

चौबीस नाडिकाओं को जो मद की आधारभूत प्रेरक तत्त्व को धारण करती है उनका मुख या प्रवेशद्वार मदन छत्रभूत होता है इसी को तीन अक्षरों वाले बीजाक्षर से युक्त रखते हुए प्रेरित या कार्यलग्न रखना चाहिए[1] ॥ १ ॥

उच्चारितानां क्रमशः कलानां
द्वितीयकं पञ्चदशस्थमेकम् ।
विसर्गमध्यं प्रणवादिमन्त्र-
मुद्धातयेत्र्यक्षरनामधयेम् ॥ २ ॥ ऊँ आः अं ॥

उच्चारितानां कलागं(नां ?) स्वराणां, द्वितीयाक्षरः दशमाक्षरश्च, मध्ये विसर्गः आदौ प्रणवः, त्र्यक्षरनामधेयं उद्धातयेत् उद्धारयेत् ॥यथा—ऊँ आः अं ॥२ ॥

इस समय उच्चारण किये जाने वाले कलाक्षरों के स्वरों के द्वितीय तथा दशम को मध्य में विसर्ग आरम्भ में प्रणवाक्षर लगा कर तीन अक्षरों वाला बना कर उसे उद्धार करना चाहिए। जैसे "ऊँ आः अं"।

सप्राप्य बाला करशाखयेव
लिङ्गेन चात्मीयसमां समेत्य ।
लिङ्गाङ्गुलिभ्यां तु तथाऽभिरूढां
प्रचोदनीयं मदनातपत्रम् ॥ ३ ॥

बाला करशाखयैव, लिङ्गेन चिह्नेन, क्रमशः आत्मीयसमां समेत्य प्राप्य, अभिरूढां प्रति लिङ्गाङ्गुलिभ्यां मदनातपत्रं प्रचोदनीयम् ॥ ३ ॥

ऊँ कामदेवाय इदम् मे हर्षय हर्षय स्वाहा ॥ क्षोभन (ण) मन्त्रः ॥

इस समय बाला स्त्री को अंगुली के द्वारा ही लिङ्ग के साथ क्रमशः आत्मीयता की समान या एक दशा बनाकर और अभिरूढ़ स्त्री को लिङ्ग तथा अंगुली दोनों को साथ

---

१. यहां मदावह नाड़ी के निरूपण में इनके क्षोभण मंत्रों को भी बतलाया गया है। यह विवरण अन्यत्र कामशास्त्र ग्रन्थों में नहीं मिलता है क्योंकि यह तान्त्रिक है। मद का अर्थ यहां स्त्रियों की सम्भोग इच्छा है, अतः उसे जो उत्पन्न करती हो ऐसी मदनाड़ियां चौबीस हैं। इनका निर्गमन स्थान मदनातपत्र या उसकी गुह्येन्द्रिय है। जैसा कि रतिरहस्य में भी है—मदनसदन रन्ध्रा दूर्द्धतो नासिकाभं सकलमदशिराढ्यं मन्मथच्छमाहुः। (१०.७) इति।

रखते हुए सम्भोग कार्य की स्थिति रखी जाती है जिसमें गुह्य मुख को द्रावित किया जाता है। यहां द्रावण मंत्र है "ॐ कामदेवाय। इदं में हर्षय हर्षय स्वाहा" ॥ ३ ॥

द्वे लोचने, द्वे वदने, तथैका
तुण्डे, स्थिता वै मुखचोद्यनाड्यः ।
अङ्गुष्ठमूलाश्रितनाडिका तु
तथा पदाङ्गुष्ठनखेन चोद्या ॥ ४ ॥

लोचने द्वे नाडिके, वदने द्वे नाडिके, तुन्दे(ण्डे) मुखे एका नाडी स्थिता, ताः नाड्यः मुखेन चोद्या मुखचोद्याः । अङ्गुष्ठमूलाश्रितानाडिका पदाङ्गुष्ठनखेन चोद्या चारणीया ॥ ४ ॥

इन चौबीस नाड़ियों में दो नाड़ी नेत्रों में, दो नाड़ियां मुख में, मुख में एक नाड़ी स्थित होती है, अतः इन नाड़ियों को इनके मुख से क्षोभण के लिये प्रेरित करे। इससे भिन्न जो नाड़ियां अङ्गुष्ठ के मूल भाग में स्थित होती हैं उन्हें पाद के अङ्गुष्ठ नख के द्वारा प्रेरित करते हैं ॥ ४ ॥

कर्णोरुपार्श्वत्रिकमस्तकेषु
संचोदनीयाः करजेन नित्यम् ।
तृप्तिर्न तासां तु विपर्ययेण
भवेत्कदापीति वदन्ति धीराः ॥ ५ ॥

कर्णे उरौ पार्श्वे त्रिके कटौ मस्तकेपु करजेन नित्यं संचोदनीयाः, विपर्ययेन(ण) तासां स्त्रीणां तृप्तिर्न भवेत्, धीराः पण्डिताः एवं वहन्ति ॥ ५ ॥

कर्ण, उरु प्रदेश, वाजुओं, पीठ या त्रिक देश, कटि प्रदेश तथा मस्तक पर सदैव नख से क्षत करते हुए नखों से धावा लगाते हुए प्रेरणा रखनी चाहिए क्योंकि इसके प्रतिकूल या विपरीत क्रिया से तृप्ति नहीं हो सकती ऐसा कुछ विशेषज्ञ तथा गम्भीरमति पण्डितों का मत या कहना है ॥ ५ ॥

वायव्यावृतवह्निमण्डलगतं हान्तं स्वरैर्वेष्टितं
सिन्दूरारुणीमिन्दुबिन्दुसहितं बीजं त्रिलोक्याऽर्च्चितम् ।
पान्थैरात्मनितम्बिनीखगमुखे ध्येयं हिताकाङ्क्षिभिः
स्वप्नेनापि न ताः प्रयान्ति वशतां तेनान्ययूनां सदा ॥ ६ ॥ हक्ष्यं ॥

हान्तं क्षकारं, किंभूतम् ? वायव्यावृतवह्निमण्डलगतं, किंभूतम् ? स्वरैर्वेष्टितं अकारादिस्वरवृतं, सिन्दूरवदरुणं, इन्दुबिन्दुसहितं नादबिन्दुगतं, किंभूतम् ? त्रिलोक्यार्च्चितं त्रि(त्रै ?)लोक्यपूजितं, आत्मनितम्बिनीखगमुखे भगे, पान्थैः हिताकाङ्क्षिभिः इदं मन्त्रं कार्यं, ताः स्त्रियः अन्ययूनां तेन कारणेन सदा वशतां स्वप्नेनापि न प्रयान्ति ॥६ ॥

यदि "इक्ष्यं" इकार के अन्त में स्थित क्षकार का जोकि प्रस्थानोद्यत हित की आकांक्षा रखकर यदि उच्चारण करे तो उससे स्त्रीजन सदैव पूर्णतः स्ववश में रहती है तथा वे स्वप्न में भी अन्य जन के प्रति विचार नहीं रख सकती। यह मन्त्र अपनी पत्नी के योनिमुख पर साधित किया जाता है। यह मन्त्र वायव्य दिशा में आवृत अग्निमण्डल स्थित होता है, इसका सिन्दूर के समान अरुणवर्ण होता है तथा यह नादबिन्दु से युक्त त्रिलोक में आदर पाने वाला या मान्य होता है ॥ ६ ॥

प्रातःसूर्यमरीचिरेव बलकृत् पिण्डो वराङ्गोदरे
दृष्टो नामविभूषितः सचपलो बिन्द्विन्दुनादान्वितः ।
ध्यातो भास्वरपद्मरागरुचिरः सीमन्तिनीचिन्तितं
सप्ताहेन वशं नयत्यथ पुरं याम्यं प्रियादर्शने ॥ ७ ॥

बलकृत् वकारः, पिण्डो लकारः, पुरुषनामनिभूषितः, बिन्द्विन्दुनादाङ्कितः नादबिन्दुविभूषितः, वराङ्गोदरे दृष्टः ध्यातः, सप्ताहेन निश्चितं वशं नयति, अथ स्वमरणे प्रियादर्शने याम्यपुरं नयति। कथंभूतो मन्त्रः ? प्रातः सूर्यमरीचिवत्, पुनः कथंभूतः ? भास्वरपद्मरागरुचिरः रक्तवर्ण इत्यर्थः ॥ ७ ॥

यदि प्रातःकाल वराङ्ग (योनि) के मध्य ध्यान कर व से युक्त लकार को पुरुष नाम से युक्त रखकर तथा बिन्दु के नाद से अंकित करे जैसे "च्व ब्लंद देत्त" मंत्र को इस प्रकार ध्यान करे तो एक सप्ताह में वश में करता है तथा स्वयं के विनाश होने या प्रिया के न दिखने पर साथ ही यमसदन को ले जाता है। क्योंकि यह मन्त्र प्रातःकालीन सूर्यकिरणों के समान प्रकाशित पद्मरागमणि के समान रक्तवर्ण का स्वरूप धारण करने वाला है ॥७ ॥

रेफस्थं सविसर्गमीश्वरयुतं सान्तं पिशङ्गद्युति
विन्यस्तं मदनातपत्रशिखरे स्त्रीणां परं द्रावकम् ।
यस्यैकस्य वशात् पुमानशिथिलश्रद्धाभियोगान्वितः
पिण्डाकृष्टिमशीघ्रमेव कुरुते प्राप्तोपदेशः शुचिः ॥ ८ ॥ ह्रीं: ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे नाडीसंक्षोभकरण—भावना—चक्रोपदेशो नामाष्टादशः परिच्छेदः ॥]

सान्तं हकारं, रेफस्थितं ईश्वरियुतं दीर्घईकारयुतं, सविसर्गं, पिशङ्गद्युति, स्त्रीणां मदनातपत्रशिखरे, विन्यस्तं, परं अतिशयेन, द्रावकं, यस्य एकस्य मन्त्रस्य वशात्, पुमान् पुरुषः, अशिथिलश्रद्धाभियोगान्वितः उत्तमश्रद्धावान्, अशीघ्रमेव, पिण्डाकृष्टिं शरीराकर्षणं, कुरुते। कथंभूतः? प्राप्तोपदेशः, शुचिः पवित्रः ॥ ह्रीं: ॥८ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां नाडीसंक्षोभण—भावनाचक्रोपदेशो नाम द्वादशः परिच्छेदः ॥

सवर्ण के आगे स्थित वर्ण हकार को रेफ से युक्त रख ईश्वरी के ईकार वर्ण से युक्त कर विसर्ग के साथ रखे जो कि मन्त्र "ह्रीं:" है। इसे स्त्रीजन के योनिभाग के शिखर पर रखे तो इससे अतिशय द्रावण होता है। इस एक मन्त्र की प्रभाव शक्ति से पुरुष अमितश्रद्धा से पूर्ण होकर शीघ्र की स्त्री के शरीर का आकर्षण कर लेता है। क्योंकि ऐसा पुरुष परम्परागत उपदेश या शिक्षा को पाया हुआ होता है ॥ ८ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसार्वस्व में नाड़ी संक्षोभकरण तथा भावनाचक्रोपदेश नामक अष्टादश परिच्छेद सम्पूर्ण)

सती चैवासतीसंज्ञा सुभगा दुर्भगा तथा।
पुत्री दुहित्रिणी चेति षडेता मदनाडिकाः ॥ १ ॥

षडेते(ताः) मदनाडिकाः अहंकारिणीनाडिकाः। तदेवाह—सती, असती, सुभगा, दुर्भगा, पुत्री दुहित्रिणी चेति ॥ १ ॥

इन चौबीस नाड़िकाओं में ये छः नाड़िकाएँ मद या अहंकार नाड़ियां मानी जाती हैं। ये हैं—(१) सती,(२) असती,(३) सुभगा,(४) दुर्भगा,(५) पुत्री तथा (६) दुहित्रिणी ॥१ ॥

योनिमात्रेऽपि सन्त्येताः कथिता मदनाडिकाः।
सती वामेऽसती सव्ये, द्वे वराङ्गत्वचि स्मृते ॥ २ ॥

एताः कथिताः मदंनाडिका नाड्यः योनिमात्रेऽपि सन्ति। वामे नाडी सती। सव्ये दक्षिणे असती। एते द्वे नाड्ये वराङ्गाद्भगाद्विनिःसूते ॥ २ ॥

किञ्चिदभ्यन्तरे चैव रन्ध्रे सव्यापसव्ययोः।
दुर्भगा सुभागा चैव द्वे नाड्यौ समुदाहृते ॥ ३ ॥

सव्यापसव्ययोर्मध्ये रन्ध्रस्य किञ्चिदत्यन्तरे दुर्भगा सुभगा द्वे नाड्यौ समुदाहृते ॥ ३ ॥

सर्वतोऽभ्यन्तरे चैव पार्श्र्वे खगमुखस्य वै।
वामे पुत्री समाख्याता, दक्षिणेन दुहित्रिणी ॥ ४ ॥

खगमुखस्य सर्वतोऽत्यन्तरे पार्श्र्वे वामे पुत्री, दक्षिणेन दुहित्रिणी नाडी, समाख्याता कथिता ॥ ४ ॥

ये नाडिकाएँ मदनाडिका कहलाती हैं तथा ये नाडियां योनिमात्र में विद्यमान होती है।[१] इनमें वामभाग में रहने वाली सती तथा दाहिने में स्थित असती होती है। ये दोनों नाड़ियां वरांग या योनि से निकलने वाली होती है। तथा बायें और दाहिने के बीच योनि छिद्र में कुछ ही अन्तर पर सुभगा और दुर्भगा नामक नाड़ी स्थित रहती है। इसी क्रम में योनि मुख (खगमुख) से पूरी तरह अन्तर्वर्ती बाजू में बायीं ओर पुत्री नामक नाड़ी और दाहिनी ओर दुहित्रिणी नामक नाड़ी स्थित मानी गयी है ॥ २-४ ॥

सतीसंचोदनाच्चैवासती रामा प्रकुप्यति।
असतीचोदनान्नारी खिद्यते च सती सदा ॥ ५ ॥

सतीसंचोदनात् चारणात् असती कुप्यति। असतीचारणात् सती खिद्यते दुःखं प्राप्नोति, सदा सर्वदा ॥ ५ ॥

इसमें जब सती नाड़ी के सेवन का कार्य होता है तो असती नाड़ी क्षुब्ध होती है, तथा असती नाड़ी के लिंग से क्षोभण करने पर सदा ही सती नाड़ी खेद प्राप्त करती है ॥५ ॥

सतीसंचोदनादेव सती हृष्यति निर्भरम्।
असतीचोदनाच्चैवासती तुष्यति नित्यशः ॥ ६ ॥

सतीसंचोदनादेव निर्भरं यथा स्यात्तथा सती हृष्यति। असतीचारणात् नित्यशः असती तुष्यति ॥ ६ ॥

---

१. पिछले परिच्छेद में अठारह मद नाड़ियों का विवरण दिया था। दोनों नाड़िकाएँ स्त्रियों के चबुक में स्थित हैं, उन्हें नहीं कहा गया। इस परिच्छेद में योनि में अन्दर स्थित नाड़ी का विशिष्ट विवरण है। ये नाड़ियां छः हैं। यह समग्र स्वरुपादि विवरण अन्य शास्त्र ग्रन्थों में कहीं निरूपित नहीं मिलता है।

सुभगाचोदनान्नारी सुभगा प्रियदर्श(र्शि) नी।
भवेत् स्निग्धाननाङ्गी च श्यामा पीनपयोधरा ॥ ७ ॥

सुभगाचारणान्नारी सुभगा प्रियदर्श(र्शि)नी, स्निग्धननाङ्गी श्यामा पीनपयोधरा भवेत्, पीनं कठिनम् ॥ ७ ॥

परन्तु सती नाड़ी के क्षोभण कार्य से ही निश्चित भाव में सती नाड़ी प्रसन्नता प्राप्त करती है। इसी तरह असती नाड़ी को इसी प्रकार क्षोभण क्रिया से सेवित करने पर असती नाड़ी भी प्रसन्न रहती है। तथा सुभगा नामक नाड़ी के क्षोभन कार्य के होने पर वह सुन्दर युवती के रूप में आकर प्रसन्नता एवं स्निग्ध-मुख-वाली और कठिनपयोधरवाली बन जाती है ॥ ६-७ ॥

दुर्भगाचोदनेनापि वनिता दुर्भगा भवेत्।
रुक्षा कृशा विवर्णाङ्गी जरारोगनिपीडिता ॥ ८ ॥

दुर्भगाचारणेनापि वनिता स्त्री दुर्भगा भवेत्, रुक्षा अस्निग्धा, कृशा, विवर्णाङ्गी, जरारोगेण निपीडिता भवेत् ॥८ ॥

इसी तरह दुर्भगा नाड़ी के क्षोभण से स्त्री दुर्भगा बन जाती है और वह रूक्ष स्वभाव वाली, कृश शरीर, वर्णहीन एवं जरा रोग से पीड़ित हो जाती है (अतः दुर्भगा नाडीं को क्षोभित नहीं करना चाहिए ॥ ८ ॥

पुत्रसंचोदनादेव प्रिया पुत्रवती भवेत्।
दुहित्रीचोदनेनापि दुहिता जायते ध्रुवम् ॥ ९ ॥

पुत्रीनाडीचारणात् प्रिया पुत्रवती भवेत्। दुहित्रीचारणेन स्त्रियाः दुहिता जायते, ध्रुवं निश्चितम् ॥ ९ ॥

इसी प्रकार पुत्री नाड़ी के संचारण कार्य से प्रिया स्त्री को पुत्र प्राप्ति होती है परन्तु दुहित्री नाड़ी के क्षोभन कर्म से पुत्री का जन्म होता है ॥ ९ ॥

उभयोश्चीदनात्सूते क्लीबमेव न संशयः।
निपुणं चोदयेन्नाडीं यदीच्छेद्धितमात्मानः ॥ १० ॥

उभयोः पुत्रीदुहित्रीनाड्योश्चारणात् क्लीबं नपुंसकं सूते, अत्र संशयो नास्ति ॥१० ॥

परन्तु यदि पुत्री और दुहित्रा नाड़ियों के एक साथ क्षोभण कर्म को किया जाएगा तो उससे "क्लीव" पुत्र की ही प्राप्ति होगी, इसलिये यदि पुरुष आत्महित चाहता हो तो इस कार्य को निपुणता पूर्वक विचार कर ही सम्पन्न करना उचित है ॥ १० ॥

मतान्तरमाह—

सती कुचेऽसती कक्षे, सुभगौष्ठे च, दुर्भगा।
त्रिके, तुण्डे स्थिता पुत्री, नितम्बे तु दुहित्रिणी ॥ ११ ॥

अब अन्य मत भी दिखलाते हैं—

अन्य आचार्यों का मत है कि सती नाड़ी कुच स्थान पर, असती कक्ष में, सुभगा नाड़ी औष्ठ स्थान पर, दुर्भगा, नाड़ी त्रिक भाग में (पृष्ठ स्थल पर), पुत्री नाड़ी मुख भाग पर तथा दुहित्रिणी नाड़ी नितम्ब प्रदेश पर स्थित मानी जाती हैं ॥ ११ ॥

एवं संचोदिता नारी नान्यमिच्छति मानवम्।
क्लीबोऽपि हृदयं सर्वे प्राप्नोत्येवं संशयः ॥ १२ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे मदनाडीस्वभावाख्यानं नामोनविंशतिः परिच्छेदः ॥]

एवं अनेन प्रकारेण, संचोदिता नारी अन्यं मानवं न इच्छति। क्लीबोऽपि नपुंसकोऽपि तस्याः सर्वं हृदयं प्राप्नोति एवं, संशयो, न ॥ १२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां मदनाडीस्वभावाख्यो नाम त्रयोदशः परिच्छेदः ॥

अतएव इस शास्त्रीय विधान के अनुगत यदि स्त्री (युवती) का संक्षोभण कर्म के साथ उपभोग रखा जाएगा तो फिर वह किसी अन्य पुरुष की कामना नहीं करेगी तथा निस्संशय रूप में ऐसा करते हुए युवती प्रिया का हृदय क्लीब पुरुष भी जीत कर सुख से जीवनक्रम चला सकता है ॥ १२ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में मदनाड़ी कथन रूप उनविंश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—o—

नखदशनपदेषु मन्दभावाः
प्रहरणकर्षणचुम्बने विरागाः।
अकुटिलमतयश्चरित्रवत्यो
मृदुरतयोऽपि च मध्यदेशनार्यः ॥ १ ॥

मध्यदेशस्य नार्यः, नखदशनपदेषु नखदन्ताधातेषु, मन्दभावाः, प्रहरणकर्षणचुंबने, विरागाः रागरहिताः, अकुटिलमतयः वक्रभावशून्याः, चरित्रवत्यः सुचरित्रयुक्ताः मदरतयः कोमलक्रीडाः ॥ १ ॥

स्त्रीजन की उपचार विधि के देशानुसार रहने के कारण जन्म, देशगत विभाग से रागगत न्यूनाधिक्य के हो जाने से इसी देश साम्य को ध्यान में रखकर सर्व प्रथम मध्यदेश[1] की स्त्रियों का (विवरण दिया जा रहा है) वर्णन करते हैं।

मध्यदेश की नारीगण प्रायः नखक्षत तथा दन्तक्षत के प्रति रुचि नहीं रखती हैं, तथा सम्भोग काल में अंगों पर प्रहार, केशाकर्षण या चुम्बन आदि के कार्य में भी रुचि नहीं लेती है। ये स्वभाव से अतिशय ऋजु या सीधी-सादी होती हैं तथा शीलवती एवं सच्चरित्र भी होती हैं ॥ १ ॥

नखदशनपदे विरक्तचित्ताः
प्रहरणचुम्बरताश्च लाटनार्यः।
तदुदितवनिताजनस्य चेष्टा
प्रभवति पश्चिमदेशसुन्दरीषु ॥ २ ॥

लाटनार्यः लाटदेशनार्यः, नखदन्तस्थाने विरक्तचित्ताः, प्रहारचुंबननिरताः। पश्चिमदेशसुन्दरीषु पूर्वश्लोकोदितवनिताजनस्य चेष्टा ॥ २ ॥

लाट या पश्चिम देश की नारियां प्रायः नख तथा दन्तक्षत के प्रति सदैव रुचि नहीं लेने वाली अंग प्रहरण एवं चुम्बन को सम्भोगकाल में पसन्द करने वाली होती हैं। इनकी पूर्व पद्य में बतलाई गयी स्त्री चेष्टाओं के साथ-साथ ये भी विषयगत (वेशगत) विशेष कार्य रहते हैं ॥२ ॥

---

१. इस परिच्छेद में देश सात्म्य बतलाया गया है जैसा कि—"उपचारो नारीणां रुचिरो देशानुसारतो भवति" कहा गया है (कन्द. चूढ़ादि)। शास्त्र में सात्म्य दो प्रकार का होता है। (१) प्रकृत्ति सात्म्य तथा देश सात्म्य। प्रकृति सात्म्य वात, पित्त तथा कफगत होता है। इसी के आधार पर स्त्रियों में तीन भेद वातला, पित्तला तथा श्लेष्मला होता है। इनका विवेचन रतिरत्नप्रदीपिका नामक ग्रन्थ में है। देश सात्म्य में स्त्रियों के जन्मदेश के विभाग की चर्चा है। इनसे स्त्रियों के राग की न्यूनाधिकता की विवेचना की जाती है इस विवरण से अन्य देश में उत्पन्न स्त्रियों से विवाह होने या उन्हें लाने पर उनको ऐसा वर्णन सहायक होता है। यही शास्त्रकार के लिये यहां निर्देश प्रदान तथा उपयोग भी समझा जा सकता है।

पशुकरणरते कृतानुरागाः
सुपरिश्लेषकचग्रहप्रसाध्याः ।
नखदशनपदे सतृष्णभावा
लघुसुरता अपि सिन्धुदेशनार्यः ॥ ३ ॥

सिन्धुदेशनार्यः एवं प्रकारा भवन्ति, तदेवाह—पशुसमसुरते कृतानुरागो याभिस्ताः, सम्यगालिंगकेशग्रहसाध्याः, नखदन्तक्षतेषु लब्धभावाः, लघुसुरताः अल्पक्रीडाः ॥ ३ ॥

सिन्ध देश की नारीजन प्रायः पशु के समान रतिकर्म को प्रसन्नता से रुचिपूर्वक लेने वाली, आलिंगन को अतिशय चाहने वाली तथा केशग्रह को रतिकर्म में साम्य मानने वाली होती है। ये नखक्षत तथा दन्तक्षत की इच्छा रखने वाली होती है, तथा थोड़े से ही सुरत कर्म से सन्तुष्ट हो जाने वाली होती हैं, तथा इनकी तृप्ति शीघ्र हो जाती है ॥ ३ ॥

गिरिकुहरवनेषु तत्स्वभावाः;
कुरुमरुदेशकुरङ्गलोचनाश्च ।
विविधरतिरताः कलासु कल्या-
श्चतुरतरा अपि सिंहले मृगाक्ष्यः ॥ ४ ॥

कुरुदेशमरुदेशकुरङ्गलोचनाः नार्यः, गिरिकुहरवनेषु तत्स्वभावाः पर्वतगह्वरवनेषु निरतस्वभावाः । सिंहलद्वीपे मृगाक्ष्यः स्त्रियः, विविधरतिरताः विविधसुरतनिरताः, कलासुकल्याः चतुःषष्टिकलासु निपुणाः चतुर(ल ?) पुरुषरताः ॥४ ॥

कुरुदेश तथा मरुदेश की स्त्रियां प्रायः गिरिप्रदेश, वन तथा पर्वत की गुहाओं में विचरण तथा रमणशील स्वभाव वाली होती हैं, अतः पर्वतवासी जन की तरह थोड़ी ग्रामीण स्वभाव वाली होती हैं। सिंहल देश की स्त्रियां विदग्ध स्वभाव की होने से विविध रतिकर्म में दक्ष होती हैं तथा चौंसठ कलाओं की जानने वाली चतुर स्त्री होती हैं ॥ ४ ॥

वैदग्ध्यवासाः शुचयो गुणाढ्या
भवन्ति काश्मीरनितम्बवत्यः ।
आचारहीनाः कृतघातसाध्या
भवन्ति जालन्धरदेशरामाः ॥ ५ ॥

काश्मीरनितम्बवत्यः नार्यः, विविधगन्धमोदितगुणसंयुक्ताः भवन्ति। जालन्धर देशस्त्रियः आचारहीनाः आघातकरणसाध्याः वदन्ति ॥ ५ ॥

काश्मीर प्रदेश की स्त्रियां विभिन्न गन्धों से सुगन्धित वस्त्रों के परिधान में रुचि रखती हैं तथा विविध पुष्पों की सुगन्ध को भी पसन्द करने वाली एवं उन्हें धारण करने वाली होती हैं। जालन्धर देश की स्त्रियां आचार एवं चरित्र से रहित तथा गुप्त रूप में सभी को घात रखकर हानि पहुंचाने वाली होती हैं ॥ ५ ॥

आलिङ्गने चित्ररतानुरक्ता
वेगान्विताः कृत्रिमलिङ्गसाध्याः।
चुम्बाभिलाषाः सततं युवत्यः
स्त्रीराज्यजाः कोशलदेशजाश्च ॥ ६ ॥

स्त्रीराज्यजाः कोशलराज्यजाश्च एवं भवन्ति, आलिङ्गने चित्ररताः अनुरक्ताश्च, वेगान्विताः, कृत्रिमलिंगसाध्याः, चुंबनप्रियाः, सततं निरन्तरम् ॥ ६ ॥

कोशल प्रदेश तथा कामरूप प्रदेश की स्त्रियां विलासवृत्ति की होने के कारण आलिङ्गन तथा विचित्र एवं विविध रतिकर्मों में स्थित रति आदि की इच्छा रखने वाली तथा वेगरति की कामना रखने वाली, देर तक कृत्रिम लिंग के द्वारा देर तक रति क्रम करने वाली तथा चुंबन कर्म की इच्छा रखने वाली होती है ॥ ६ ॥

प्रचण्डवेगाः कृतघातसङ्गाः
सदोन्मदा इन्द्रियपानलुब्धाः।
कराङ्गुलीकृत्रिमलिङ्गसाध्याः
कर्णाटदेशे कथितास्तरुण्यः ॥ ७ ॥

कर्णाटदेशे तरुण्यः कथिताः, प्रचण्डवेगाः, कृतघातगण्डाः कृतो घातो गण्डो याभि० ताः, सर्वदा उन्मदाः उन्मत्ताः, इन्द्रियपानलुब्धाः, कराङ्गुलीकृत्रिमभिः-लिङ्गसाध्याः ॥ ७ ॥

कर्नाटक देश की स्त्रियां तीव्र वेग से रतिक्रम की भावना रखती हैं, तथा स्वभाव से धोखेबाज और गुप्तघात करने वाली, सर्वदा मदमत्त भाव में स्थित इन्द्रियों की तृप्ति तथा मधुपान में मत्त रहने वाली होती हैं। इन्हें विचित्र रति कर्म भाता है और ये करांगुली से तथा कृत्रिम लिंग से भी देर तक संभोग कर्म को चाहने वाली होती हैं ॥७ ॥

सदा चतुःषष्टिकलाप्रसक्ता
रतास्तथालिङ्गनचुम्बनेषु ।
कराङ्गुलिक्षेपविधिप्रसाध्या-
श्चण्डा महाराष्ट्रकुरङ्गनेत्राः ॥ ८ ॥

महाराष्ट्रकुरंगनेत्राः स्त्रियः एवं प्रकारा भवन्ति, सदा चतुःषष्टिकलाप्रसक्ताः, आलिङ्गनचुंबनेषु रता निरताः, करांगुलीक्षेपन(ण)विधिप्रसाध्याः चण्ड्यः प्रचण्डाः ॥८ ॥

महाराष्ट्र प्रदेश की युवती स्त्रियां सदैव चौंसठ कलाओं की दक्षता दिखलाने वाली, आलिंगन तथा चुम्बनादि के साथ रतिकर्म में रत रहने वाली चण्डवेग में रति की इच्छुक तथा करांगुलि को प्रवेश करवा कर या कृत्रिम लिंग से देर तक रति कर्म से तृप्त होने वाली होती हैं।

केशग्रहालिङ्गनचुम्बनेषु
जिह्वाप्रवेशे च विमर्द्दने च ।
संभूषणे मर्द्दनताडने च
सदाऽनुरक्ता द्रविडे रमण्यः ॥ ९ ॥

द्रविडे द्राविडदेशे, रमण्यः स्त्रियः, एवंप्रकारा भवन्ति, केशग्रहे, आलिंगने, चुम्बने, जिह्वायाः, प्रवेशः तस्मिन् जिह्वाप्रवेशे, विमद्र्दने, भूषणे, मर्दनताडने च, सदानुरागा रक्ताः ॥ ९ ॥

द्रविड देश की रमणी युवतियां रतिकाल में केशग्रहण, आलिंगन, चुम्बन तथा जिह्वा के प्रवेश, योनि के विमर्दन करने शरीरादि के भूषण करने, शरीर के मर्दन तथा ताड़न करने आदि की प्रवृत्ति या अभिलाषा करने वाली होती है तथा इनमें रुचि लेती है ॥९ ॥

किमपि रसिकचित्तं चुम्बनालिङ्गनादा-
वधरमधुरसमीहाऽत्यन्तलावण्यदेहाः ।
सुरभिसुरतभावास्तीर्थयात्राभिलाषा
मृदुलमधुरवाचो गोडबङ्गांङ्गनाः स्युः ॥ १० ॥

गोडवंगाङ्गनानां ईदृशाः रीतयः—चुम्बनालिङ्गनादौ किमपि रसिकचित्तं, अधरमधुसमीहात्यन्तलावण्यदेहाः, सुरतो सुरतभावाः, तीर्थयात्रायां अभिलाषाः, मृदुलकोमलमधुरवाचः ॥ १० ॥

गौड़ देश या बङ्ग देश की सुन्दरी स्त्रियां चुम्बन तथा आलिंगन के कर्मों में चित्त को रसिक भाव से पूर्ण कर रखने वाली होती हैं। ये अधर पान की अभिलाषा रखते हुए शरीर को लावण्यमय बनाने की चिन्ता रखती हैं। सुगन्धित पदार्थों को धारण कर सुरत कर्म की इच्छा रखती है तथा विहार तथा तीर्थयात्रा का इच्छा रखने वाली होती है और कोमल तथा मधुर वाणी का ये व्यवहार करने वाली होती हैं॥ १० ॥

आघाते मर्द्दने वा नखदशनपदे निःस्पृहाः क्षोभणे च,
नानाक्रीडाकलालंकृतिरतिमनसो मन्दवेगोपरागाः ।
दृष्ट्वा दूरेऽपि यूनः सपदि मनसिजावेशसाकाङ्क्षनेत्रा
नेपाले कामरूपे सुमधुरवचनाश्चीनदेशे च रामाः ॥ ११ ॥

नेपाले कामरुपे चीनदेशे च, रामाः स्त्रियः, ईदृशाः, आघाते मर्दने नखदन्ताघाते निःस्पृहाः, क्षोभणे च निःस्पृहा नानाक्रीडाकलालङ्कृतिरतिमनसो, मंदवेगोपरागाः मन्दवेगे उपरक्ताः, यूनः दूरेअपि दृष्ट्वा, सदपि तत्क्षणादेव, मनसिजावेशसाकाङ्क्षनेत्राः मनसिजः कामः तस्य आवेशेन साकाङ्क्षे नेत्रे यासां ताः ॥ ११ ॥

नेपाल, कामरूप तथा चीनदेश की रमणियां सुरत काल में हस्त प्रहार करने, शरीर के मर्दन करने तथा नख एवं दन्त से क्षत या आघात के प्रति अधिक रूचि नहीं रखती हैं, ये क्षोभणकर्म से भी इसी प्रकार विमुख रहती हैं। ये सदैव विभिन्न कलाओं से अलंकरण करने की भावना अधिक रखती हैं तथा मन्दवेग से रतिकर्म की कामना रखती है। ये जब भी किसी सुन्दर युवक या स्वामी को देखती हैं तभी इनके चित्तों में कामभाव की लहर वेग से दौड़ जाने से नेत्रों में उनकी आकांक्षाएं झलक जाती हैं (या प्रकट होती रहती हैं)॥ ११ ॥

योपितां विषयसाम्यतः प्रियं चुम्बने प्रकृतिकृत्यमिष्यते ।
तत्र चैकविषये प्रयुज्यतेऽभीप्सितप्रकृतिसाम्यतस्तदा ॥ १२ ॥

योपितां स्त्रीणां, विषयसाम्यतः, प्रियचुम्बनं प्रकृतिकृत्यं इष्यतेः तत्र च एकं विषये, अभीप्सितप्रकृतिसाम्यतः वाञ्छितस्वभांवसाम्यतः, तदा तस्मिन्काले, प्रयुज्यते ॥ १२ ॥

यह प्रायः देखा गया कि विपयगत या देशादि के अनुरूप समानता के कारण रतिकाल में स्त्रीजन को चुम्वन कर्म प्रवृत्ति से ही इष्ट माना जाता है। यह किसी एक समय या विषय की दशा में प्रायः अपनी अपनी इष्ट प्रवृत्ति के अनुरूप भी सुविधा एवं रूचि के अनुरूप प्रयोग में आ सकता है (या प्रयुक्त किया जा सकता है)॥ १२ ॥

अन्यथा हि न सुखस्य साधनं
सर्वमेतदनपेक्षितं कृतम्।
दुःसहेन शिशिरेण निर्भरं
पीडिते व्यजनमारुता इव ॥ १३ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे देशविषयविभागो नाम विंशतिः (विंशः) परिच्छेदः ॥]

अन्यथा, हि निश्चितं, एतत्सर्वं अनपेक्षितं विपरीतं सुखस्य साधनं। तत्र एवं दृष्टान्तमाह—दुःसहेन शिशिरेण निर्भरं यथा स्यात् (तथा) पीडिते व्यजनमारुता इव ॥ १३ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां विषयविभागो नाम चतुर्दशः परिच्छेदः ॥

क्योंकि इन कर्मों की यदि अपेक्षा न रखें तो फिर सुख का अन्य साधन क्या विशेष रूप में शेष रहेगा। क्योकि जैसे शिशिर काल में अतिशय शिशिर के अनुभव होने पर यदि पंखा डुलाया जाएगा तो उसका प्रभाव तथा अनुभव दोनों की विपरीत तथा कष्ट देने वाला लगेगा ॥३ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्वव में देश तथा विषयगत विभाग नामक विंश (अध्याय) परिच्छेद समाप्त)

—o—

सुशक्तिवह्निप्रविदार्यमाण-
सद्वक्त्रहृद्यस्तिमिताभिरामम्।
यत्तालुजिध्ह्वाजनितं प्रशस्तं
श्रृङ्गारविद्भिः स्तनिताभिधानम्॥ १ ॥

सुशक्तिवह्निना उदरस्थितवह्निना, प्रविदार्यमानं (णं) ऊर्ध्वश्वासेन विदार्यमानं (णं) दूरीकरणीयमानं, यत्स्वस्त्रं, हृद्यं मनोहरं, तेन स्तिमिताभिरामं स्तिमितेन अभिरामं सुन्दरं, यत्तालुजिह्वाजनितं, शृंगारविद्भिः स्तनिताभिधानं प्रशस्तम् आहुः ॥ १ ॥

उदरवर्ती जठराग्नि के द्वारा ऊर्ध्वश्वास के द्वारा निकलकर ऊपर आने वाले वायु के साथ सुन्दर मुख से निकाले जाने वाले ऐसे चुम्बन काल के शब्द या ध्वनि जो तालु और जीभ से उत्पन्न होते हों तो शृंगारविद् रसिकजन उन्हें स्तनित नामक एक सुन्दर प्रभेद मानते हैं।[१] ॥ १ ॥

हृष्यत्कपोतादिविहङ्गमानां
यथा रुतं कूजितमामनन्ति ॥
आयासनिःश्वासनिरोदहृद्यं
मनीबिणस्तच्छ्वसितं वदन्ति ॥ २ ॥

हृष्यत्कपोतादिविहंगमानां यथा रुतं शब्दं कूजितमामनन्ति ॥ तथैव आयासनिःश्वास-रदादिहृद्यं—आयासः परिश्रमः, नि(:)श्वासः श्वासः, रदादिर्दन्तादिः, तैर्हृद्यं मनोहरं, मनीषिणः तत् श्वसितं वदन्ति ॥ २ ॥

जैसे प्रसन्न कपोत पक्षी के उच्चरित शब्द को कूजित कहते हैं उसी तरह शरीर के प्रयासयुक्त निश्वास तथा दांतों के बीच से निरुद्ध निश्वास को सुन्दररूप में मुख से निकलकर शब्द करने पर "श्वसित" को सीत्कार या फुत्कार कहा जाता है ॥ २ ॥

उच्छ्वासदन्तोष्ठजसीत्कृतं यत्
सीत्कारसंज्ञं विवुधास्तदाहुः ॥
श्लिष्टाधरोत्पादितपून्निदानं
पूत्कारमनवर्थकनामधेयम् ॥ ३ ॥

यत् उच्छ्वासदन्तोष्ठजगृत्कृतं तत्, विबुधाः पण्डिताः, गृत्कारसंज्ञं आहुः ।। श्लिष्टाधरेण उत्पादितं पूदिति यत् शब्दं तत् पूत्कारं, अन्वर्थकं नामधेयम् ।। ३ ॥

जो शरीर के उच्छवास, दन्त तथा ओष्ठों से निकलने वाली होती है उसे विशेषज्ञ या शास्त्रज्ञ पण्डित गृत्कार या सीत्कार नाम से कहते हैं। इसका यह नाम अधरों को मिलाकर उससे उत्पन्न पूत् आदि शब्दों के कारण अनेक नाम की सार्थकता भी रखता है। (कहीं इसे दूत्कृत शब्द भी कहते हैं) ॥ ३ ॥

---

१. इस परिच्छेद में अन्य कामशास्त्रीय ग्रन्थों से भिन्न या विशिष्टरूप में सशब्द चुम्बन का विवेचन हे। यह विवेचन कामशास्त्र के अव्यक्ति ध्वनि विशेष की उत्पन्न स्थिति को आधार बनाकर किया गया प्रतीत होता है।

हिक्शब्दवच्छ्वासनिरोधपूर्वं
यच्चुम्बनं हिक्कृदिति प्रसिद्धम् ॥
सन्निष्पतन्मौक्तिकशब्दरम्यं
तद्दूत्कृतं सर्वजना वदेयुः ॥ ४ ॥

[इति पण्डितपद्म(श्री) विरचिते नागरसर्वस्वे—सशब्दचुम्वनानि सप्त—एकविंशतिः(विंश) परिच्छेदः ॥]

हित्शब्दवत्, श्वासनिरोधपूर्वं, अर्थात् स्त्रियः यच्चुम्बनं, तत् हिकृत् इति प्रसिद्धम् ॥ संनिःष्पतन्मोक्तिकशब्दरम्यं यथा स्यात् तथा चुंबनं, वरकामिजनप्रियं एतत् चुम्बनं दूत्कृतं गदितम् ॥ ४ ॥

[इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां—सशब्दचुम्बनानि—पंचदशः परिच्छेदः ॥]

जो श्वास को अवरूद्ध रख कर सम्भोगकाल में स्त्री का चुम्बन शब्द को निकालते हुए ध्वनि करते हैं तो यह निकलने वाले मोतियों के समान ध्वनि वाला शब्द सर्वविज्ञजन की सम्मति में दूत्कृत या सीत्कृत शब्द माना जाता है ॥४॥

[पण्डित पद्मश्री विचरित नागरसर्वस्व में सशब्द चुम्बनादि का प्रतिपादक एकविंश परिच्छेद सम्पूर्ण]

—०—

अव्यक्तरेखैर्नखरैः समस्तैः
रोमाञ्चकृत् सत्कणिताभिरामम् ।
स्तने कपोले च हनुप्रदेशे
प्रयोज्यतामुच्छुरितं प्रियायाः ॥१ ॥

अव्यक्तरेखैः नखरैः प्रियायाः स्तने कपोले हनुप्रदेशे प्रयोज्यतां उच्चरितं, कथंभूतमुच्चरितं ? रोमाच्चकृतं, सत्कणिताभिरम्यं सशब्देन अभिरम्यं मनोहरम् ॥१ ॥

शरीर पर जिनकी दी जाने वाली नखक्षत की रेखाएं या खरोचें अधिक स्पष्ट न दिखती हो तथा जो सीत्कार तथा अलंकारों की झंकारों के साथ सुन्दरता से पूर्ण हो रही

हो तो ऐसे नक्षक्षतों को प्रिया को जो वक्षस्थल, कपोल, गर्दन तथा शरीर के अन्य भाग पर भी इन्हें संयोगकाल में प्रदान की जाती हैं (ये सभी आच्छुदित हैं[१] ॥ १ ॥)

वक्रोऽर्धचन्द्रः कथितो नखाङ्कः
सद्भिः प्रदिष्टः स्तनयोर्गले च ॥
यदा तु तौ सम्पुटतां प्रपन्नौ
ब्रूते तदा मण्डलकं मुनीन्द्रः ॥ २ ॥

स्तनयोर्गले च वक्रो अर्धचक्रः नखाङ्कः, प्रदिष्टः सद्भिः कथितः ॥ यदा तौ संपुटतौ नखौ चन्द्राकारेण मिलितौ प्रयत्नात्, तदा मुनीन्द्रः मण्डलकं व्रूते ॥२ ॥

उरोज तथा कण्टस्थल पर नख से चिन्हित अंक को "नखांक"कहा जाता है जो अर्धचन्द्र के समान आकार वाला होता है तथा जो दोनों नखों के सम्पुट से मिल कर दिया हो या इष्ट हो तो फिर उस चिन्ह को "मण्डलक"नामक नखक्षत कहा जाएगा।

किञ्चिच्चत दीर्घा क्षतिमूरुपृष्ठ-
श्रोणीतटे व्याधपदं लिखन्ति ॥
दीर्घायतां तां प्रवदन्ति रेखां
स्थानं तदीयं यदनन्तरोक्तम् ॥ ३ ॥

ऊरुपृष्टश्रोणीतटे किञ्चिद्दीर्घो व्याघ्रपदं क्षति लिखन्ति ॥ तां दीर्घायतां क्षतिं रेखा प्रवदन्ति। स्थानं तदीयं य (त्) अनन्तरोक्तं श्रोणीतटमित्यर्थः ॥ ३ ॥

यदि प्रिया के ऊरु प्रदेश, पीठ या योनिप्रदेश पर नखक्षत थोड़े लम्वे या बड़े आकार के हो तो उनको "व्याघ्रपद"कहा जाता है, तथा ऐसी लम्वी और आयत रेखा को "दीर्घायत"रेखा कहते हैं इनका देने का स्थान सदा क्षोणीतट ही मान्य है ॥ ३ ॥

शशप्लुतं पञ्च नखक्षव्रणानि
सान्द्राणि पृष्ठस्तनगुल्फदेशे ॥

---

१. इस परिच्छेद में नखच्छेदों को इनके उचित स्थानों के निर्देशों के साथ बतलाया है जिनका विवरण पंचसायक, अनंगरंग तथा प्रायः अनेक कामशास्त्रग्रन्थों में मिलता है। परन्तु यहां इन्हें विभागपूर्वक अनेक परिच्छेदों में विभिन्न स्थितियों तथा अन्य विवरणों को विभाग बना कर दिखलाया है जो विशिष्ट भी है तथा पारस्परिक भी। यह विवरण अलग अलग परिच्छेदों में विभिन्न स्थितियों के साथ भी पद्मश्री ने विस्तार बतलाया है।

स्तनस्य पृष्टे विरलानि तानि

निगद्यतामुत्पलपत्रमेतत् ॥ ४ ॥

पृष्ठस्तनगुल्फदेशे, सान्द्राणि घनानि, पञ्च नखव्रणानि शशप्लुतं निगदितम् ॥ स्तनस्य पृष्ठे तानि पञ्च नखव्रणानि, विरलानि, एतदुत्पलपत्रं निगद्यताम् ॥ ४ ॥

प्रिया के पृष्ठ, स्तन तथा गुल्फ प्रदेश पर जो गहरे नखक्षतदिये जाएं तो "शशप्लुत"कहलाते हैं। यदि उरोज के ऊपर पांच स्थानों पर वर्तुलाकार रूप में नखक्षत दिये जांए तो उन्हें "उत्पलपत्र"कहेंगे। इन क्षतों के बीच में कुछ स्थान की दूरी रहती है ॥४ ॥

हित्वा कनिष्ठाङ्गुलिजत्रणानि

चतुर्नखानां विरलीकृतानाम्।

कपोलदेशे स्तनमण्डले च

वदन्ति मायूरपदं मुनीन्द्राः ॥ ५ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—नखपदान्यष्ट द्वाविंशतिः (विंशः) परिच्छेदः ॥]

कपोलदेशे स्तनमण्डले च कनिष्ठाङ्गुलिजव्रणानि हित्वा चतुर्नखानां विरलीकृतानां व्रणानि, मुनीन्द्राः, मायूरपदं वदन्ति ॥ ५ ॥ इति नखपदानि अष्टौ ॥८ ॥

यदि प्रिया के कपोल तथा स्तनप्रदेश पर कनिष्ठ अंगुलि के नखक्षत को देकर शेप चारों अंगुलियों के द्वारा नखक्षत किये जाए जो एक दूसरे से दूरी लिए हुए रहते हों तो इसे शास्त्रकार मुनि "मायूरपद" कहते हैं। (ये अष्ठनखपद हैं।) ॥५ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में अष्टनखपद नामक द्वाविंशपरिच्छेद सम्पूर्ण)

—–o—–

रागाभिलक्ष्यं स्फुटमोष्ठदेशे

तद्गूढकं दन्तपदं वदन्ति ॥

उच्छूनकं स्यादधरे च सव्ये

गण्डे दृढालिङ्गनतस्तदेव ॥१ ॥

स्फुटं निश्चितं, ओष्ठदेशे, रागाभिलक्ष्यं रागपूर्वकं, आलिङ्गनं दन्तपदं वदन्ति ॥ अधरे सव्ये गण्डे दृढालिङ्गनतः तदैव उच्छूनकम् ॥ १ ॥

यदि आलिंगन काल में ओष्ठ प्रदेश पर दन्तों से ऐसा हलका क्षत किया जाए कि ओष्ठ का वर्ण लाल दिखलाई देवे (या जो अति अनुराग में भरकर दिया गया हो) तो उसे गूढ़क नामक दन्तक्षत कहते हैं। यदि अनुराग से पूर्ण आलिंगन के साथ दाहिने भाग पर ओष्ठ पर दन्तक्षत दिया जाय या वह इसी दाहिने कपोल पर रखे तो "उच्छूनक" नामक दन्तक्षत कहलायेगा।[१] ॥ १ ॥

रदोष्ठसंज (य) न्त्रणतः प्रवाल-
मणिः कपोले कृतिना प्रयोज्यः ॥
द्विदन्तसन्दंशयतोऽधरान्तं(न्तर्)
द्विबिन्दुको बिन्दुरिति प्रसिद्धः ॥ २ ॥

रदोष्ठसंजन्त्रणतः दन्तओष्ठजव्रणात्, कृतिना पण्डितेन, कपोले प्रवालमणिः प्रयोज्यः कार्य ॥ द्विदन्तसंदंशकृतः अधरान्तः द्विबिन्दुको बिन्दुः इति प्रसिद्धः ॥२ ॥

रतिशास्त्र के अभिज्ञ के द्वारा दन्त एवं ओष्ठज व्रण के आगे कपोल प्रदेश पर जो दन्तक्षत दिया हो उसे "प्रवाणमणि" कहते हैं जिसमें दन्त तथा ओष्ठ दोनों से यह चिन्ह बनाया जाता है। दोनों दांतों की कैंची बनाकर यदि ओष्ठ का मध्य भाग दबाया जाए तो इससे दोनों बिन्दु बन जाते हैं, जो "द्विबिन्दु" चिन्ह कहलाता है ॥ २ ॥

रदैरनेकैर्मणिबिन्दुमाला(ले ?)
गले कपोले हृदये लिखन्ती(न्ति ?)
तद्गण्डकाख्यं विषमैश्च कूटै
र्वृत्त(त्तं ?) स्तने नागरका वदन्ति ॥ ३ ॥

गले कपोले हृदये अनेकैः रदैः मणिबन्दु माला लिखन्ती, अनेकैः रदैः, विषमै कठिनैः, कूटेः निर्दयै. गले कपोले हृदये वृत्तस्तने मणिबिन्दुमाला लिखन्ति, नागरकाः तत् गण्डकाख्यं वदन्ति ॥ ३ ॥

---

१. इस परिच्छेद की "दन्तच्छेद्य" क्रियाओं के साथ रखा गया है। इन दन्तच्छेद्यों का प्रयोग नायक तथा नायिका दोनों के द्वारा किया जा सकता है।

जब अनेक दन्तों से गल प्रदेश, हृदय तथा कपोल प्रदेश पर मणि तथा विन्दु की माला को बनाकर कठिन तथा निर्दय भाव में दन्तदशन किया जाए तो ऐसा दन्तक्षत शास्त्रज्ञजन "गण्डक" नामक बतलाते हैं॥ ३ ॥

घनाः सुदीर्घा रदनाङ्कराजयो
विभिन्नसद्विभ्रमलोहितान्तराः ।
विमण्डना एव कृताः पयोधरे
लिखन्ति यत्नेन वरा वरार्चितम् (वराहचर्चितं ?) ॥ ४ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे-दशनपदान्यष्टनाम त्रयोविंशतिः(विंश) परिच्छेदः ॥]

पयोधरे, वराः श्रेष्ठनराः, वरार्च्चितं यथा स्यात् तथा, यत्नेन, लिखन्ति, रदनाङ्कराजयः दन्तक्षतपंक्तयः, विमण्डना एव कृताः अलंकरणं कृतमित्यर्थः, किंभूताः रदनाङ्कराजय ? घना निबिडाः, सुदीर्घाः, विभिन्नाः सद्विभ्रमाः उत्तमप्रवालाः तद्वत् लोहितान्तरा ॥ ४ ॥ इति दशनपदानि अष्ट ॥ ८ ॥

यदि प्रिया के पयोघर पर घने (गहरे) लम्बे आकार के तथा अनेक विलासपूर्ण उत्तम प्रवाल जैसे बीच बीच में लाल हो जाने वाले श्रेष्ठतायुक्त दन्तक्षत यदि चिन्हित किये गये हों तो ऐसी दन्तक्षतों की पंक्ति की अलंकार बन जाने के कारण उसे "वरालचित्रित" या वराहचर्चित नामक दन्तक्षत कहा जाता है॥ ४ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में दन्तक्षत अष्टविध नामक त्रयोविंशतितम परिच्छेद समाप्त)

——०——

प्रियं मृगाक्षी सरलाङ्गयष्टि-
र्निवेष्टयन्ती लतिकेव शालम् ।
विचुम्बार्थं नमयेत्तदीयम्
मुखं लतावेष्टितकं तदाहुः ॥ १ ॥

सरलाङ्गयष्टिर्मृगाक्षी, प्रियं निवेष्टयन्ती, विचुम्बनार्य, चुम्बनाय तदीयं स्वामिनो मुखं, नमयेत, तत् लतावेष्टितकं आहुः ॥ १ ॥

यदि मृगाक्षी प्रिया अपने प्रिय को सरल लता की तरह अपनी देहयष्टि से आवेष्टित करती हुई आलिंगन करे प्रिया की ओर चुम्बनाधिलाषा से मुंह को भी झुका दे तो इसे "लतावेष्टित" नामक आलिंगन कहा जाता है।[१] ॥ १ ॥

आक्रम्य पादमबला चरणेन पत्यु-

रूरुं तथाऽपरपदेन समञ्चयन्ती ।

तत्पृष्ठसङ्गतभुजाऽन्यतरेण दोष्णा

तं संमुखं सरभसं स्फुटमुन्नयन्ती ॥ २ ॥

अबला स्त्री, पत्युः पुरुषस्य पादं आक्रम्य, ऊरुं अपरेण पादेन समञ्चयन्ती, दोष्णः तत्पृष्ठसंगभुजाऽन्यतरेण सरभसं स्फुटं अंचयन्ती चुम्बन्ती, तत्संमुखं आहुः, पूर्वेणान्वयः ॥ २ ॥

किञ्चिच्च खिन्नरुदितेच्छति चुम्बनार्त्त

प्राणेश्वरं यदिह वृक्षमिवाधिरोदुम् ।

वृक्षाधिरूढमुपगूहनमेतदुक्त-

माश्लेषयुग्ममुदितं स्थितकान्तमेत्य ॥ ३ ॥

किञ्चित् खिन्नरुदिता चुम्वनार्ता यदि प्राणेश्वरं वृक्षमिव अधिरोढुं इच्छति, वृक्षाधिरूहनं, उपगूहनं आलिङ्गनम्, एतदाहुः । स्थितं कान्तं एत्य प्राप्य यदुपगूहनं आश्लेषयुग्मं आहुः ॥३ ॥

यदि सुन्दरी प्रिया अपने पति के पैर को पैर से दबाकर दूसरे पैर को अपनी भुजा को उसी की पीठ पर लगाती हुई वेग से सम्मुख होकर चुम्वनार्थ मुंह को उठाती हुई आगे वढ़ाये तथा किञ्चित् स्वेदमय शरीर तथा प्रणय रुदन में होकर उसी प्रिय के शरीर पर वृक्ष की तरह अधिरोहण की भावना से मुख को चुम्वनार्थ आगे रखती हुई स्थित रहे तो "वृक्षाधिरूढ़" नामक यह आलिंगन होता है क्योंकि यहाँ स्थित प्रिय पुरुष को समीप आकर दोवार आलिंगन की स्थिति में रखा जाता है ॥ २-३ ॥

संस्पर्शपूर्वमबलापरिरम्भणं यत्

तत् स्पृष्टकं मुनिजनैः कथितं पुराणैः ॥

---

१. यहां सर्वाङ्ग स्पर्श के रहने से आलिंगन का प्रायः सभी शास्त्रग्रन्थों में विवरण मिलता है क्योंकि इसके विवेचन सभी अच्छे रूप में प्रयुक्त करने के इच्छुक होते हैं। इसी कारण इनका भेदों के साथ विवरण सर्वत्र शास्त्रग्रन्थों में रखा जाता है।

कुड्याश्रयेषु परिपीडनमङ्गनायाः
कुर्यात् पतिर्यदिह पीडितमेतदाहुः ॥ ४ ॥

संस्पर्शपूर्वं अबलापरिरम्भणं आलिङ्गनं पुराणैः मुनिजनैः तत् पृष्ठ(ष्ट)कं कथितम्। पतिः स्वामी। कुड्याश्रयेषु गृहाश्रयेषु, अंघनायाः स्त्रियः परिपीडनं एतत्पीडितं आहुः ॥ ४ ॥

यदि प्रिया का स्पर्श कर (पीछे से) आलिंगन किया जाता हो तो इसे "पृष्ठक" आलिंगन विज्ञाता आचार्य बतलाते हैं, तथा यदि किसी दीवार का सहारा लेकर प्रिया को दवाते हुए आलिंगन किया जाय तो इसे "परिपीड़न" नामक आलिंगन माना जाता है ॥ ४ ॥

तल्पे वितन्वदवगूहनकेलिमुच्चै-
र्यन्निस्तरङ्गमिथुनं घटयेत रागात्।
रागातिरक्तपरिवर्धितगौरवेण
तत्कीर्त्तितं मुनिवरैस्तिलतण्डुलाख्यम् ॥ ५ ॥

तल्पे शय्यायां, तरङ्गरहितमिथुनं, अवगूहनकेलिं आलिङ्गनकेलिं, उच्चैः वितन्वत, रागात् अनुरागात्, घटयेत्, केन? रागातिरक्तपरिवर्द्धितगौरवेण तत्तिलतण्डलाख्यं मुनिजनैः कीर्तितम् ॥ ५ ॥

यदि शय्या पर अपने शरीर को निश्चल रखते हुए प्रिया को आलिंगन कर रति के लिए अतिशय अनुराग के साथ चलावे तो अतिशय अनुराग के साथ दोनों की रक्ति या अंनुराग में परस्पर गौरव प्रदान करने के कारण इसे "तिलतण्डुल" नामक आलिंगन कहते हैं क्योंकि इसमें वाहुओं तथा ऊरू का परस्पर मिलना तथा टकराहट तिलतन्दुल के समान असंसृष्ट भाव में की जाती है ॥ ५ ॥

अङ्के स्थिताऽथ शयने मृगशावकाक्षी
गात्रेअपि(त्रे प्रि) यस्य विस(शि ?) ती वनिताऽनुरागात्।
गाढोपगूहनवशेन निरन्तरं यत्
संश्लेषमाहुरिह येन(दुग्ध ?) जलाभिधानम् ॥ ६ ॥

वनिता अनुरागात् यस्य पुरुषस्य गात्रे विस(श ?)तीवं मृगशावकाक्षी शयने अङ्के स्थिता, गाढोपगूहनवशेन दृढालिंगनवशने, निरन्तरं यत् संश्लेषं आलिंगन, इह येन कारणेन जलाभिधानं गदितम् ॥ ६ ॥

मृगनयनी प्रिया प्रिय के अंक में स्थित होकर अनुराग के कारण इसी प्रिय के शरीर में प्रविष्ट सी होती हुई जो अतिशय गाढ़ आलिंगन करने की स्थिति में ही निरन्तर श्लिष्ट आलिंगन करती है तो यह "दुग्धजल" (नीरक्षीर) नामक आलिंगन कहलाता है। । ६ ॥

आक्रम्य यत्र जघनं जघनस्थलेन
संलंघयेत् प्रियतमा पतिमानताङ्गी ।
व्यक्तीभवन्नखपदा गलितोत्तरीया
तज्ज्ञैस्तदेव कथितं जघनोपगूहम् ।। ७ ।।

प्रियतमा स्त्री, पतिं जघनस्थलेन जघनं आक्रम्य संलङ्घयेत्, तज्ज्ञैः पण्डितैः, तदेव जघनोपगूहनं कथितम्। प्रियतमा कथंभूता? आनताङ्गी, प्रकटी(टि) तनखचिह्ना, गलितोत्तरीया विगलितउत्तरीयवस्त्रा ॥ ७ ॥

यदि प्रिया स्त्री के द्वारा पति को उसके जघनस्थल को आक्रमित कर अर्थात् नायक के जघन स्थलों पर स्थित हुआ जाए तो ऐसी अपने मुख को नमाकर तथा नख चिह्नों को व्यक्त कर दिखलाती हुई तथा अपने उत्तरीय वस्त्रों को दूर किये हुए रहने वाली नायिका का यह कार्य "जघनोपगूहन" नामक आलिंगन कहलाता है ॥ ७ ॥

दध्यादुरःस्थितभरं कुचयुग्ममुच्चै-
स्तन्व्यास्तदा प्रकथयन्ति कुचोपगूढम् ।
ऊरूपगूढमपि कीर्तितमङ्गनोर्वोः
पीडां यदोरूयुगलेन करोति कान्तः ।। ८ ।।

उरःस्थितभरं कुचयुग्मं स्तनयुगलं यदा दध्यात्, तदा कुचोपगूढं कथयन्ति । कान्तः यदा उरुयुगलेन अङ्गनोर्वो पीडां करोति तदा ऊरूपगूढं कीर्तितम् ॥ ८ ॥

यदि नायिका आसन या बाजू में शयन करती हुई अपने स्तन-युगल को प्रिय के वक्ष से झुककर आलिंगन करे तो यह आलिंगन "कूचोपगूढ़" कहलाता है, जिसमें गाढ़ स्थिति में स्त्री के आलिंगन के कारण उसका स्पर्श सुख पुरुष (और स्त्री को) मिलता है ॥८ ॥

वक्त्रे मुखं नयनयोर्नयनैर्नि(ने नि ?) युज्य
क्रीडासुखानि (न्वि ?) तरसोन्मनसः प्रियायाः ।
हन्याल्ललाटफलकेन ललाटमध्यम्
लालाटिकं तदुपगूहनमामनन्ति ।। ९ ।।

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—आलिङ्गनानि दशनाम चतुर्विंशतिः(विंशः) परिच्छेदः ॥]

प्रियायाः वक्त्रे मुखे नियुज्य, नयनयोर्नयनैर्नियुज्य, प्रियायाः ललाटमध्यं ललाटफलकेन हन्यात्, तदालिङ्गनं लालाटिकं आमनन्ति॥ इत्यालिङ्गनानि दश ॥१० ॥

यदि प्रिया के मुख के साथ अपना मुख नेत्रों के साथ नेत्रों को मिलाते हुए उसी के ललाट के बीच के प्रदेश को यदि आहत किया जाकर क्रीड़ा सुख का आनन्द लेते हुए आलिंगन होता है तो यह "लालाटिक" आलिंगन कहलाता है। इस प्रकार का आलिंगन ग्रन्थकार के अनुसार पुरुप प्रयोज्यता को संकेतित करता है परन्तु शास्त्र व्याख्याकारों में जयमंगलाकार के मत में यही नायिका के द्वारा भी प्रयोज्य हो सकता है॥ ९ ॥

(इति पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में दश आलिंगन नामक चतुर्विंश परिच्छेद समाप्त)

—०—

संचोदनार्थे मदनाडिकानां
निपीड्य वक्षःस्तननाभिमीषत्।
यच्चुम्ब्यते नागरकैर्मुनीन्द्रा
निपीडितं चुम्बनमेतदाहुः ॥ १ ॥

मदनाडिकानां संचोदनार्थं संचारणार्थे, वक्षःस्तननभिं ईषत् निपीड्य, नागरकैः यच्चुम्ब्यते, तत् मुनीन्द्रा निपीडितं चुम्बनमाहुः ॥ १ ॥

मदनाड़िका को प्रेरित करने के लिए यदि वक्षस्थल, स्तन, नाभि स्थान को कुछ शरीर के भार से दबाते हुए नायक या पुरुष के द्वारा जो नायिका का चुम्बन किया जाता हो तो नायक के द्वारा होने वाला यह "निपीड़ित" नामक चुम्बन होता है[१] ॥ १ ॥

भ्रान्तेन वक्त्रेण ललाटदन्त-
च्छदेषु तद्भ्रामितनामधेयम्।

१. इस परिच्छेद में कहे गये निश्शब्द चुम्बनादि अन्वर्थ संज्ञा वाले हैं, तथा नायक प्रयोज्य भी माने गये हैं जब कि कामसूत्रादि में नायिका प्रयोज्य इन्हें बतलाया है।

उन्नासितोष्ठेन मुखेन नेत्रे
गण्डेतथोतथोन्नामितकं प्रसिद्धम् ॥ २ ॥

ललाटदन्तच्छदेषु ललाटोष्ठेषु, भ्रामितेन वक्त्रेण चुम्बनं, तत् भ्रामितनामधेयम्। उर्ध्वं नामितेन ओष्ठेन मुखेन, नेत्रे गण्डे च, तदा उन्नामितकं प्रसिद्धम् ॥ २ ॥

जब मुंह को थोड़ा घुमाते हुए ललाट एवं ओष्ठ का चुम्बन किया जाए तो ऐसा चुम्बन "भ्रामित" कहलाता है तथा कमर झुकाकर ओष्ठ को अपने मुख के द्वारा विचुम्बित करे जिनके साथ नैत्र तथा कपोल या गण्डस्थल का भी चुम्बन रहे तो मिलने वालो ओष्ठों के कारण इसे "उन्नामितक" नामक चुम्बन कहा जाता है ॥ २ ॥

नाभौ कपोले स्फुरिताधरेण
पयोधरे वा स्फुरितं प्रदिष्टम्।
तथोदितं हृज्जघनोरुदेशे
श्लिष्टधरोष्ठेन च संहतोष्ठम् ॥ ३ ॥

नाभौ कपोले स्फुरिताधरेण पयोधरे कुचे, स्फुरितं चुम्बनं प्रदिष्टं कथितम्। तथा तेनैव प्रकारेण जघनोरुदेशे शिलष्टाधरोष्ठेन विरलाधरोष्ठेन चुम्बनं संहतोष्ठं प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥

यदि नाभि एवं कपोलस्थल पर, पयोधर पर कम्पित अधरों के द्वारा घूमने वाले मुख से चुम्बन किया जाए तो यह "स्फुरित" नामक चुम्बन है तथा यही चुम्बन हृदय, जघन तथा ऊरु प्रदेश पर ओठों को मिला कर किया जाए तो इसे "संहतोष्ठ" नामक चुम्बन भेद कहा जाता है ॥ ३ ॥

वक्रीकृतास्येन गले कपोले
कुचे च तद्वैकृतकं तदाऽऽहुः।
सम्यङ्नतीकृत्य कपोलयुग्मं
सर्वाङ्गदेशे नतगण्डमेतत् ॥ ४ ॥

वक्रीकृतास्येन वक्रकृतमुखेन गले कपोले कुचे च यच्चुम्बनं तत् कृतकं आहुः। कपोलयुग्मं सम्यक् नतीकृत्य नम्रीकृत्य सर्वप्रदेशे चुम्बनं एतत् नतगण्डं आहुः ॥ ४ ॥

यदि मुंह को तिरछा रखकर गला, कपोल तथा कुच स्थल का चुम्बन किया जाए तो इसे "कृतक" नामक चुम्बन कहते हैं तथा दोनों कपोलों को झुका कर उसका पूरी तरह चुम्बन किया जाए तो इसे "नतगण्ड" नामक चुम्बन प्रभेद कहा जाता है ॥ ४ ॥

एतानि निःशब्दविचुम्बनानि मया यथास्थानमुदीरितानि ।
अथाभिधास्ये मधुरस्वनानि मुखाधिवासानि विचुम्बनानि ॥ ५ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—निःशब्दचुम्बनानि सप्त पञ्चविंशतिः (विंशः) परिच्छेदः ॥]

एतानि निःशब्दचुंबनानि, मया, यथास्थानं स्थानमनतिक्रम्य, उदीरितानि कथितानि । अथ अनन्तरं, मुखाधिवासि विचुम्बनानि मधुरस्वनानि, अहं अभिधास्ये कथयिष्ये । निःशब्दचुम्बनानि सप्त ॥ ७ ॥

इस प्रकार यथास्थान प्रसंगानुसार मैंने निश्शब्द चुम्बन के प्रभेद यहां दिखलाये हैं, अब आगे मैं शब्दयुक्त चुम्वनों का जो मुख की सुगन्धित स्थिति वाले होते हैं, उनको भी बतला रहा हूं ॥ ५ ॥

(आचार्य पद्मश्री प्रणीत नागरसर्वस्व में सप्तनिश्शब्द चुम्बन नामक पञ्चविंश परिच्छेद समाप्त)

—o—

सूक्ष्मीकृताग्रा रसना मुखान्तः
प्रवेशिता तां प्रवदन्ति सूचीम् ।
वितन्यमाना प्रतता मता सा,
प्रकम्पमाना यदि वा करी स्यात् ॥ १ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—जिह्वाप्रवेशाः त्रयःषड्विंशतिः (षड्विंशः) परिच्छेदः ॥]

स्त्रीमुखान्तः, सूक्ष्मीकृताग्रा रसना जिह्वा, प्रवेशिता, तां सूचीं प्रवदन्ति । सा जिह्वा, वितन्यमाना प्रस्तारिता, प्रतता मता । प्रकम्पमाना इतस्ततः चारिता यदि, वाकली स्यात् ॥ जिह्वाप्रवेशाः त्रय ॥ १ ॥

यदि स्त्री के मुख में सम्यक् एवं सीधी जिह्वा का प्रवेश करवाया जावे तो यह जिह्वा सूची तथा वही फैलाकर प्रविष्ट की जावे तो "प्रतता" तथा कम्पित करते हुए इधर-उधर घुमाकर प्रविष्ट करवाई जावे तो उसे "वाकलरी" जिह्वा कही जाती है ॥ १ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में जिह्वा प्रवेश के तीन प्रभेद नामक षडविंश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—०—

जिह्वाग्रमात्रस्य विचूषणं य-
त्तदुच्यतामोष्ठविमृष्टसंज्ञम्।
विचूष्यते शीघ्रतरं यदेत-
त्तच्चूषणं चुम्बितकं वदन्ति ॥ १ ॥

जिह्वाग्रमात्रस्य, यद्विचूषणं लेहनं, तत् ओष्ठविमृष्टसंज्ञं उच्यताम्। यदेतच्चूषणं शीघ्रतरं विचूष्यते, तच्चूषणं विचुम्बितं वदन्ति ॥ १ ॥

जहां जिह्वा के अग्रभाग मात्र का विशेष भाव से चूंसना किया जाए तो यही शास्त्रकारों द्वारा "ओष्ठ विमर्श" नामसंज्ञक बतलाया जाता है, और जब यही शीघ्रता से चूसा जाए तो इसे "चुम्वितकचूषण" कहते हैं[१] ॥ १ ॥

यदत्र दष्ट्वाऽधरचूषणं परै-
र्मनीषिभिः कीर्तितमार्द्रचुम्बितम्।
परस्परं स्त्रीपुरुषौ विचूषितो
वदन्ति तत्संपुटकं विलासिनः ॥ २ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—चूषणानि चत्वारि—सप्तविंशतिः (विंशः) परिच्छेदः ॥]

परैर्मनीषिभिः उत्तमपण्डितैः, यदत्र अधरचूषणं दष्ट्वा, आर्द्रचुम्बितं कीर्तितम्। परस्परं स्त्रीपुरुषौ विचूषतः, विलासिनः तत्संपुटकं वदन्ति। चूषणानि चत्वारि ॥ ४ ॥

---

१. इस परिच्छेद में वर्णित चूषण ओष्ठकर्म से भी गतार्थ हो सकते हैं तथा इन्हें विचुम्बन माना जा सकता है। ये सभी विवरण अन्य ग्रन्थों में अनुक्त हैं।

॥इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्वे-टीकायां चुम्बनप्रकाशो नाम षोडशः परिच्छेद ॥

इसी कार्य को अधरचूषण देखकर किया जाये तो यही "आर्द्रचुम्बित" नामक चूषण भेद कहलाता है तथा जब दोनों स्त्री पुरुष परस्पर यही चूषण कार्यकरें तो इते "सम्पुटक" चूषण कहते हैं[१]

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में चार चूषणकर्म नामक सप्तविंशतितम परिच्छेद समाप्त)

—–०—–

वामोरुसंस्थापितदक्षिणोरु-
नारी यदा स्वस्तिकमाह धीरः ॥ २ ॥

...नारी यदा वामोरुसंस्थापितदक्षिणोरू(रुः) धीरः स्वस्तिकं आह ॥ २ ॥

अब विविध करण बन्धों में जो कि आभ्यंतर सम्भोग कर्म में सम्पन्न होने वाले माने जाते हैं, इनमें जब स्त्री बायें ऊरु पर दक्षिण ऊरु को स्थित करे तो उसे "स्वस्तिक" बन्ध कहते हैं[२] ॥ २ ॥

यदोरुमूलोपरि योपिदूरू
वदन्ति माण्डूकमिदं मुनीन्द्राः ॥ (२ ॥)

पुरुषस्य ऊरुमूलोपरि, योषित् स्त्री तस्याः ऊरू, मुनीन्द्राः तदा माण्डुकं वदन्ति ॥ (२ ॥)

कौर्म यदोत्तानरतौ प्रयत्ना-
दुभौ भवेतां सरलीकृताङ्गौ ॥ ३ ॥

---

१. इस परिच्छेद में वर्णित चूषण ओष्ठकर्म से भी गतार्थ हो सकते हैं तथा इन्हें विचुम्बन माना जाता है। परन्तु ये सभी विवरण अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों में अनुक्त हैं।

२. पिछले सात परिच्छेदों में बाह्यरतकर्म के प्रभेद बतलाये थे। अब अगले पांच परिच्छेदों में आभ्यन्तररत के प्रयोज्य प्रभेदों के विवरण दिये गये हैं। इनमें अनेकविध प्रयोज्यकरण तथा बन्ध आते हैं, तथा स्मरयन्त्र विधियां भी गयी हैं। यहां बन्धों के वर्गीकृत परिच्छेदों में विवरण दिये गये है।

यदा स्त्रीपुरुषौ, ऊर्ध्वाधरतप्रयत्नौ ऊर्ध्वसुरतप्रयत्नौ सरलीकृताङ्गौ समानाङ्गौ ॥ ३ ॥

तथा यदि ऊरु के मूल पर स्त्री ऊरू रखकर स्थित या आश्लिष्ट रखकर रति-कर्म करती हो तो उसे "माण्डूक-बन्ध" कहते हैं। तथा यदि स्त्री एवं पुरुष दोनों ऊपर तथा नीचे की स्थिति में पाद स्थापन कर या अपने शरीर को ढीला या सरल कर रति कर्म करे तो इसे "कर्म-बन्ध" कहा जाता है ॥ ३ ॥

पादो स्थितावात्महनुप्रवेशे
नार्या यदा तद्धनुपादसंज्ञम् ॥ ३ ॥

नार्या आत्माहनुप्रवेशे कपोलात् अधःस्थाने, पादौ स्थितौ, तत् हनुपादसंज्ञं भवति ॥ ३ ॥

यदि स्त्री के स्वयं के इनुस्थान पर कपोल प्रदेश से नीचे दोनों पैर स्थित कर यदि रति-कर्म हो तो इसे "इनुपादबन्ध" कहेंगे।

आबद्धपर्यङ्कपदप्रियायाः
कण्ठं पतिर्बन्धुरयेद्भुजाभ्याम्।
तज्जानुजङ्घान्तरनिःसृताभ्यां
पद्मासनं तत् करणं प्रदिष्टम् ॥ ४ ॥

आबद्धः आस्थितः, पंर्यके क्रोडे, पदः यस्याः प्रियायाः, पतिः स्वामी, भुजाभ्यां बन्धुरयेत् वेष्टयेत्, कथंभूताभ्यां भुजाभ्यां? तस्याः जानुः तज्जानुः, तज्जानुजजङ्घान्तरयोः निःसृताभ्यां, तत् करणप्रवेशं पद्मासनं विदुः ॥ ४ ॥

यदि सुन्दरी युवती वाम जंघा पर दक्षिण जंघा को रख तथा पुरुष दक्षिण जंघा पर वाम जंघा को रखकर दृढ़ रखते हुए यदि रतिकर्म इस पर्यङ्कपद की स्थिति में प्रिया के चरणों को स्थिर रखते हुए रतिकर्म सम्पन्न करे तो ऐसे उसके जानु तथा जंघा के मध्य से निकलने वाले दोनों भुजाओं के द्वारा किया गया करणबन्ध "पद्मासन" बन्ध कहलाएगा ॥ ४/१-२ ॥

पर्यङ्कमेकेन पदा निबद्धं
तदर्धपद्मासनमुच्यते तु ॥ ५ ॥

एकेन पदा, पर्यङ्कं क्रोडं, निबद्धं आरोपितं, तदा अर्धपद्मासनम् ॥ ५ ॥

यदि यही एक पैर या पक्षक या बाजू में पर्यङ्कबन्ध को रख कर सम्पन्न किया जाए तो यही "अर्धपद्मासनबन्ध" हो जाता है ॥ ५ ॥

यदाऽङ्गना पादयुगं निदध्यात्
प्रियोरसि स्यादिह पिण्डिताख्यम् ॥ ५ ॥

आरोप्यते तत्र यदैकपादं
तदा भवेत्पिण्डितधर्मपूर्वम् ॥ ६ ॥

यदा अङ्गना स्त्री, पादयुगं, स्वपादयुगं, प्रियोरसि स्वामिवक्षःस्थले, निदध्यात् अर्पयेत्, तदा पिण्डिताख्यम् ॥५ ॥

एकं पादं यदा स्वामिवक्षःस्थले आरोप्यते, तदा अर्धपूर्वं पिण्डितं अर्धपिण्डितं इत्यर्थः ॥ ६ ॥

यदि स्त्री अपने दोनों चरणों को प्रियतम के वक्षस्थल पर स्थापित कर बाहुपाशों से ग्रीवा को ग्रहण करें तो ऐसा बन्ध "पिण्डित"बन्ध कहलाता है। इसी प्रकार यदि स्त्री अपने एक पैर को ही इसी रूप में प्रियतम के वक्षस्थल पर रखकर बाहुओं के द्वारा ग्रीवा को लपेटती हुई रहे तो इसे "अर्धपिण्डित" नामक बन्ध कहा जाएगा[१] ॥ ६ ॥

संस्थापयेदूरुयुगं मृगाक्षी
पुंस्कन्धयोर्जृम्भितमुच्यते तत् ॥ ६ ॥

मृगाक्षी पुंस्कन्धयोः ऊरुयुगं स्थापयेत् तदा जृंभितं उच्यते ॥ ६ ॥

विन्यस्यते तत्र यदोरुरेको
नार्या तदा वेणुविदारणं स्यात् ॥ ७ ॥

नार्या स्त्रिया यदा तत्र पुरुषस्कन्धे एकः ऊरुः विन्यस्यते तदा वेणुविदारणं स्यात् ॥ ७ ॥

यदि रति भाव नें मृगनयनी स्त्री प्रियपुरुष के दोनों कन्धों पर अपने दोनों ऊरुओं को स्थापित करती है तो इसे "जृम्भितबन्ध" कहते हैं। इसी तरह यदि स्त्री अपना एक ऊरू पुरुष के कन्धे पर स्थापित कर वार पर परिवर्तित स्थिति में रखे तो यह बन्ध "वेणुविदारण" बन्ध कहलाता है[२] ॥ ७ ॥

---

१. पिण्डित बन्ध को ही कामसूत्रकार ने उत्पीडित बन्ध तथा अनंगरंग ने "स्फुटन" कहा है। यही विवरण रतिरहस्य में भी है।

२. जृम्भित को कामसूत्र आदि ने इसी नाम से वर्णित किया। यह रतिरहस्य में

स्त्रियः स्वपार्श्वद्वितीयार्पितोरो-

रिन्द्राण्यपि स्यात्प्रियजानुयोगात् ॥ ७ ॥

स्वपार्श्वद्वितीयार्पितोरोः—स्वस्य पार्श्वं स्वपार्श्वं, स्वपार्श्वद्वितये अर्पितः ऊरूः(रुः ?) यथा. प्रियजानुयोगात् स्वामिजानुयोगात्, इन्द्राणी, नाम स्यात् ॥ ७ ॥

एका(स्कंधा ?) श्रितं कुञ्चितमेकजानु

प्रसारितं चैकपदं तरुण्याः ॥ ८ ॥

यूना समापीडितकण्ठदेशं

संवेशनं सूच्यभिधानमग्र्यम् ॥ ८ ॥

पुरुषस्य एकाश्रितं एकचरणं प्रसारितं, एकजानु कुञ्चितं, तरुण्याः एकपादं प्रसारितं, यूना समापीडितकण्ठदेशं, संवेशनं सुरतं, सूची—अभिधानं, अग्र्यं श्रेष्ठम् ॥ ८ ॥

यदि स्त्री अपने दोनों ऊरुओं को अपने बाजू में फैलाकर स्थापित करती हुई रहे तो जानु से मिलकर रहने से इसे "इन्द्राणी-बन्ध" कहते हैं। इसी तरह यदि पुरुष एक चरण को फैलाकर तथा दूसरा पैर अपनी जानु को सिकुड़ते हुए रखे तथा इसी तरह स्त्री भी एक पाद को ऊपर फैलाकर तथा दूसरे को सिकुड़ा कर भुजा से नायक के कण्ठ को धारण कर आलिंगन के साथ रतिकर्म करे तो इसे[1] "एकपद-बन्ध" समझना चाहिए। और पुरुष अपना एक पैर आगे फैला कर और एक जानु को सिकुड़ा कर तथा स्त्री भी एक पैर को लम्बा सीधा फैला कर यदि सुरत कर्म को सम्पन्न करती हो तो यही "सूचीबन्ध" कहा जाएगा। यह बन्ध श्रेष्ठ या अग्र माना जाता है ॥ ८/१-२ ॥

आरोपितं पादयुगेन चोर्वो-

नार्या यदा नागरकं प्रशस्तम् ॥ ९ ॥

निपीडयेदूरुयुगेन मध्ये

कान्तस्तदा ग्राम्यमुदीरितं तत् ॥ ९ ॥

"जृम्भितक" तथा "जृम्भक" और अन्य ग्रन्थ अनंगरंग में इसे "समपाद" कहा गया है। वेणुविदारण बन्ध प्रायः शंखिनी स्त्री की रुचि का होता है। यह रतिरहस्यकार का मत है।

१. एकपद बन्ध का स्वरूप स्मरदीपिका में इस प्रकार है— पादमेकं करे कृत्वा द्वितीयं स्कन्धसंज्ञितम्। गले धृत्वा रमेत् कामी बन्धस्त्वेकपदः स्मृतः॥ इति।

नार्याः स्त्रियः, ऊर्वोर्मध्ये, पादयुगेन आरोपितं, नागरकं प्रशस्तं उत्तमम् ॥ ९ ॥ ऊरुयुगेन मध्ये कान्तः निपीडयेत्, तदा ग्राम्यं, उदीरितं कथितम् ॥ ९ ॥

यदि (युवती) स्त्री के दोनों ऊरुओं के मध्य पुरुष के दोनों पाद द्वारा वेष्टित रहे तो यह[१] "नागरक" बन्ध होता है तथा शास्त्रवित् इसे उत्तम मानते हैं। इसी प्रकार यदि दोनों ऊरुओं के द्वारा मध्यभाग या कटिप्रदेश को प्रिय निपीड़ित करता हुआ रखता है तो यह "ग्रामबन्ध" नामक करण कहलाता है ॥ ९-९/१-२ ॥

पादौ स्थितौ वल्लभनाभिदेशे
नार्या यदा कार्कटनामधेयम् ॥ १० ॥
वस्तौ कटीचोदनदोलितौ तौ
तदोच्यते प्रेङ्खणमग्रधीभिः ॥ १० ॥

वल्लभः पुरुषः तस्य, नाभिभागे, नार्याः पादौ स्थितौ, तदा कर्कटनामधेयम् ॥१० ॥ तौ पादौ, वस्तौ नाभ्यधोभागे, "बस्तिर्नाभेरधो द्वयोः" इत्यमरः, कटीप्रेरणदोलितौ, अग्रधीभिः पण्डितैः, प्रेक्ष(ङ्ख)णमुच्यते ॥ १० ॥

यदि पुरुप के नाभि प्रदेश या भाग पर स्त्री के दोनों चरण फैलाकर रख दिये जाते हों तो इसे "कर्कटबन्ध" कहते हैं। इसी प्रकार यदि पुरुष (नायक) के नाभि प्रदेश तक ले जाकर नारी अपने दोनों पैरों को स्थित रखकर किसी तोरण या झूले की तरह गतिशील रखती है तो बुद्धिमान् शास्त्रज्ञ इस बन्ध को "प्रेङ्खबन्ध" बतलाते हैं। यह बैठकर रहने वाले बन्धों में अच्छा माना जाता है[२] ॥ १० ॥

आश्लिष्य वामेन भुजेन कान्तः
पयोधरे सव्यकरं विदध्यात्।
नार्या नृजङ्घायुगसंयतांघ्रे-
र्बुधैस्तदा मार्कटकं तदुक्तम् ॥ ११ ॥

नृजंघायुगे(न) संयतांघ्रेः पुरुषजङ्घाद्वयनियमितचरणायाः नार्याः, कान्तः, वामेन भुजेन, आश्लिष्य आलिंग्य, दक्षिणकरं कुचे विदध्यात्, तदा बुधैः पण्डितैः, तत् मार्कटिकं उक्तम् ॥ ११ ॥

---

१. नागरकबन्ध का विवरण अनंगरंग तथा पञ्चसायक में भी है। यह बन्ध समरत की दशा में प्रयोज्य होता है।
२. अनंगरंग आदि में यह उपविष्टबन्ध में वर्णित है।

यदि बायें भुज से प्रिय का आश्लिष्ट होकर आलिंगन करती हुई पुरुष की जंघाओं में अपने पैरों को वेष्टित या प्रविष्ट करवा कर रहे तथा प्रिय भी अपने वाम भुजा के द्वारा आलिंगन कर दाहिना हाथ नायिका के कुच पर रख कर स्थित रहे तो इस बन्ध को "मार्कटिक" बन्ध कहा जाता है इसमें एक दूसरे को सम्मुख रखकर यह बन्ध रहता है॥ ११-११/१-२॥

दधाति रामोरुयुगं कराभ्यां

कान्तस्तदोद्भुग्नकमुच्यते तत्॥ १२॥

नीतं शिरश्चैकपदं तरुण्याः

प्रसारितं चापरमायताख्यम्॥ १२॥

कान्तः कराभ्यां रामोरुयुगं दधाति, तदा उद्भग्नकं उच्यते॥ १२॥ तरुण्याः एकपदं शिरो नीतं, अपरं पदं प्रसारितं तत् आयंताख्यं उच्यते॥ १२॥

यदि पुरुष अपने दोनों हाथों से प्रिया के दोनों ऊरुयुगल को लेकर आलिंगन रखकर यदि रतिकर्म रखे तो यह बन्ध "उद्भुग्नक" बन्ध कहलाता है। इसी प्रकार यदि युवती के एक पैर को मस्तक तक उठा कर स्थापित रखते हुए दूसरे को फैलाकर रखा जाता है तो यह करण बन्ध "आयतक" बन्ध माना गया है। यहां स्त्री का एक पैर सीधा और लम्बा रखा जाता है॥ १२-१२/१-२॥

कण्ठं निजं बन्धुरयेद् भुजाभ्यां

स्वजानुजङ्घान्तरनिःसृताभ्याम्।

नितम्बिनी यत्र वदन्ति धीरा-

स्तन्नागपाशं करणप्रधानम्॥ १३॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—उत्तानकरणं चतुर्विंशतिसङ्ख्याकं—अष्टाविंशतिः(विंशः) परिच्छेदः॥]

नितम्बिनी, यत्र सुरते, भुजाभ्यां स्वजानुजंघान्तरनिःसृताभ्यां निजं कण्ठं बन्धुरयेत्, धीराः पण्डिताः, तत् करणप्रधानं नागपाशं वदन्ति॥ १३॥

इत्युत्था(त्ता)नस्थितकरणानि चतुर्विंशतिः॥ २४॥

यदि युवती स्त्री अपनी दोनों भुजाओं को अपनी दोनों जानुभाग तथा जंघाओं के बीच से निकलकर अपने कण्ठ को प्रिय के द्वारा गृहीत करवाती हुई आलिंगन भाव में स्थित रहे तो यह करणबन्ध "नागपाशबन्ध" कहा जाता है॥ १३-१३/१-२॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में उत्तम स्थित चतुर्विंशति करण नामक अष्टाविंश परिच्छेद सम्पूर्ण)

---०---

द्वयोस्तिरश्चोः सरलीकृताङ्ग्योर्-
विघट्टनं संपुटकं तदुक्तम् ॥
यदोरुयुग्मेन निपीडयेत्पतिं
प्रिया तदा पीडितकं तदाहुः ॥ १ ॥

द्वयोः स्त्रीपुरुषयोः, तिरश्चोः तिर्यग्भूतयोः, सरलीकृताङ्ग्योः, तद्विघट्टनं संपुटकं उक्तम् ॥

प्रिया यदा ऊरुयुग्मेन पतिं निपीडयेत्, तदा पीडितकं आहुः ॥ १ ॥

यदि दोनों स्त्री पुरुष का बाजू में तिरछे होकर सोते हुए तथा अपने शरीर को सरल या ढीला रखकर पृथ्वी भाग या शयनीय पर जानु स्थित रखते हुए परस्पर आलिंगन रत होकर जो संघट्ट या धक्का लगाते हुए रति की जाए तो इसे "सम्पुटक" करणबन्ध कहते हैं। इसके अतिरिक्त यदि स्त्री पति को अपने दोनों ऊरु, चरणों से दबाती या आवेष्टित रखकर यदि क्रियाशील स्थिति में रहे तो इसे "पीड़ितक-बन्ध" कहा जाएगा ॥ १ ॥

यस्मिन् भर्तुः सरलिततनोः कुञ्चितत्र्यस्त्रनार्या
गाढाश्लेषो यदिह मुनयो मुद्रकं तद्वदन्ति ।
पृष्ठे पश्चाद्दयितघटनाकुञ्चितत्र्यस्त्रगात्रं
सीमन्तिन्या विमुखशयनं यत्परावृत्तकं तत् ॥ २ ॥

कुञ्चितत्र्यस्त्रनार्याः, कुञ्चितयोनिनार्याः, सरलिततनोः भर्तुः, गाढाश्लेषः आलिङ्गनं, मुनयः मुङ्ग(द्र)कं वदन्ति ॥

पृष्ठयस्तेः(ष्टेः ?) पश्चात्, सीमन्तिन्याः विमुखशयनं दयितघटना-कुंचितत्र्यस्त्रगात्रं पुरुषसंवन्धसंकुचितयोनिशरीरं, तत् परावृत्तकम् ॥२ ॥

यदि स्त्री तिरछे सोती हुई तथा अपने शरीर को सरल एवं योनि सिकुड़ा कर (शिथिल रखकर) तथा पुरुष अपने ऊरु को दोनों में भरते हुए गाढ़ आलिंगन कर रमण करे तो इसे "मुद्रकबन्ध" कहा जाता है। तथा यदि स्त्री करवट लेकर सोती हुई तथा अपने

शरीर तथा योनि को सिकुड़ाकर पीछे से प्रिय के आलिंगन के साथ रमण करती है तो इसे "परावृत्त" करणबन्ध कहा जाता है॥ २ ॥

जङ्घाद्वयेनैव नरस्य जङ्घे
स्त्री वेष्टयेद्वेष्टितकं प्रसिद्धम्।
भगेन लिङ्गस्य निपीडने तु
वदन्ति तद्वाडवकं मुनीन्द्राः ॥ ३ ॥

स्त्री एकनरस्य जंघायां जंघाद्वयेन वेष्टयेत्, तत् वोष्टितकं प्रसिद्धम् ॥

भगेन लिङ्गस्य निपीडने, मुनीन्द्राः तत वाडवं वदन्ति ॥ ३ ॥

यदि स्त्री प्रिया के ऊरु को अनपी दोनों जंघाओं के द्वारा लपेट कर यदि संकोच और फैलाव के साथ क्रमिक स्थिति बनाकर रखते हुए रतिकर्म करे तो यही "वेष्टितक करणबन्ध" होता है। इसी क्रम में यदि रतिवश स्त्री अपने गोपनीय अंग से पुरुप के गोपनीय अंग को निपीड़ित करे या दबाती हुई धक्का लगाती है तो इस बन्ध को मुनि के मत में "वाडवक करणबन्ध" माना जाएगा॥ ३ ॥

आसीनकान्तत्रिकपादयुग्मं
नितम्बवत्या यदि युग्मपादम्।
पार्श्र्वे स्थितानां मृगलोचनानां
गीतानि तज्ज्ञैः करणानि सप्त॥ ४॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—पार्श्र्वकरणानि सप्त—ऊनात्रिंशः परिच्छेदः ॥]

आसीनकान्तत्रिके, पादयुग्मं नितम्बवत्याः स्त्रियाः यदि, युग्मपादम् ॥

त्रिके तिर्यक्स्थितानां मृगलोचनानां, गीतानि सप्त, तज्ज्ञैः पण्डितैः, करणानि ॥ तिर्यक्करणानि सप्त ॥ ४ ॥

यदि पृथ्वी या शयन पर आसीन प्रिय को पीठ या पीछे की ओर युवती स्त्री के दोनों पैर रहे ओर इस स्थिति में दृढ़ आश्लेप के साथ नायक या प्रिय उसी प्रिया के फैलाये गये पाद से दृढ़ता से ग्रहण करते हुए रमण करता है यो यह पीछे या पीठ की ओर स्त्री के स्थित रहने वाले क्रम में "युग्मपाद" नामक करणबन्ध माना गया है। इस प्रकार शास्त्र के अभिज्ञ मुनियों ने पार्श्र्वकरणबन्ध के सात प्रकार वतलाये है॥४ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में सप्त पार्श्वकरण नामक एकोनत्रिंश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—o—

मयूरकाद्याश्रितया तरुण्या
कान्तस्य योगोऽथ विपर्ययेण।
विधायकं कल्पज(क ?) शास्त्रविद्धि-
स्त्वासीनसंज्ञं करणं तदुक्तम्॥ १॥

मयूरकाद्यासनश्रितया तरुण्या, विपर्ययेन(ण) कान्तस्य योगः, कामशास्त्रविद्भिः व्या(आ)सीनसंज्ञं, विधायि(य)कं करणं, उक्तम्॥ १॥

यदि मयूरासन पर बैठी हुई नायिका युवती के साथ ऊपर या विपरीत भाव से सम्मुख स्थित प्रिय या पुरुष का अपने को तिरछा रखकर दोनों जंघाओं पर स्थित होते हुए कामशास्त्रोक्त विधान के अनुरूप विधान से रति कर्म होता है तो ऐसा बन्ध "आसीनकरण बन्ध" कहा गया है[१] ॥१॥

मञ्जीरकान्तिच्छुरितत्रिकस्य
पर्यङ्कबन्धस्थिरभर्तुरङ्गम्।
स्थिताङ्गनाबाहुविषक्तकण्ठं
प्रशस्तमेतल्ललितं विधिज्ञैः॥ २॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—आसीनकरणे द्वे—त्रिंशः परिच्छेदः॥]

मञ्जीरकान्तिच्छुरितस्य पर्यकबन्धवत् स्थिरं(र ?) भर्तुः पर्यकबन्धस्थिरभर्तुः, अङ्गं शरीरं, बाहुविषक्तकण्ठ(ण्ठी ?) अङ्गना स्थिता, तदा विधिज्ञैः एतत् ललितं प्रशस्तं उक्तम्॥ २॥

इत्यासीनकरणे द्वे॥ २॥

---

१. यहां वर्णित बन्धनों का विवरण अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता। मयस्क-मयूर आदि के आकार में निर्मित कुर्सी या तत्सदृश ऊर्ध्वासन। इस बन्ध में आसन के ऊंचे होने से नायक को तिरछा होना पड़ता है।

यदि नूपुरों की शोभा से पूर्ण नायिका स्थिर पर्यकबन्ध शरीर वाले प्रिय के अंक में स्थित होकर अपनी जंघाएँ या ऊरु फैला कर संभोगार्थ स्थित होती है तथा इसी नायिका के बाहु नायक के कंठ को थामे रहते हों तो ऐसा करण शास्त्रज्ञ मुनिजन "ललित" करणबन्ध के नाम से बतलाते हैं[1] ॥ २ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में दो आसीनकरण नामक त्रिशंत्तम परिच्छेद समाप्त)

---o---

अनुच्चैः पूर्वाङ्गं, निजचरणयोः पाणियुगलं,
तथा यष्टेः पश्चात्स्थितपतिकराश्लिष्टमुदरम्।
नितम्बिन्या धीरैः पशुकरणमेतन्निगदितं
प्रशस्तं यत्सिन्धौ मरुकुरुजनैश्चापि सुतराम्॥ १ ॥

यदि नायिका के नाभि के ऊपर के शरीर को झुकाकर दोनों पादों पर दोनों हाथ रखती हुई प्रिया के कटि या उदर भाग को धारण करते हुए या पकड़कर यदि रमण किया जाता है तो इसे "पशुकरणबन्ध" कहेंगे। यह बन्ध मरु तथा कुरु देश के निवासीजन को तथा सिन्धुदेश-वासी-जन को प्रिय माना गया है[2] ॥ १ ॥

तनौ तल्पालीने निजकरधृतं पार्ष्णियुगलं
नितम्बिन्याः पृष्ठं नतमतिशयोत्क्षिप्तजघनम्।
समुन्नीतं पश्चात् परमदयितेनोरुयुगलं
स्मृतं व्याघ्रस्कन्दं करणमशतं(नं ?) दुष्करमतम्॥ २ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—अधोमुखकरणे द्वे—एकत्रिंशः परिच्छेदः ॥]

यदि शरीर को तल्प या बिस्तर पर फैलाकर या रखकर प्रिया के दोनों हाथों को थाम कर उसी के दोंनों पादों के पार्ष्णि भाग को उठाकर तथा पीठ के पिछले भाग को

---

१. ललित के स्थान पर लसित पाठ भी मिलता है। पञ्चसायक में उपविष्ट बन्धों में पद्मासन नाम से इसे बतलाया गया है।

२. इस प्रकार के करणबन्धों में देश विदेश में अतिशय रुचि या आसक्ति होती है। यह पशुकरण धेनुक नामक है। जैसा कि स्मरदीपिका में है। यथा—"स्त्रियमानतपूर्वाङ्गीं पादाहितकरद्वयाम्। धृतोदरो रमेत् कामी बन्धोऽयं पशुनामकः।"

झुकाकर अतिशय जघन भाग को ऊपर उठाते हुए ऊपर रखते हुए दोनों ऊरुयुगलों को स्थिर रखते हुए व्याघ्र के समान उछाल या ऊपर की ओर झपटे तो इसी समान रहने वाला यह रमण कार्य "व्याघ्रस्कन्द नामक" करणबन्ध कहलाता है। यह करणबन्ध शरीर के पीछे के भाग की ओर फैला रहने के कारण दुष्कर या कष्टदायी और शरीर के अतिशय अभ्यास की अपेक्षा रखने वाला माना जाता है[१]

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में दो अधोमुखकरण नामक इकतीसवां परिच्छेद सम्पूर्ण)

—०—

तन्व्या नरेणोद्धृतपादमेकं
चान्यं पृथिव्यां हरिविक्रमाख्यम्।
कान्तत्रिकारोपितपादमेकं
तदोच्यते व्यापर(व्यायत ?) नामधेयम्॥ १॥

तन्व्याः स्त्रियाः, एकं पादं, नरेण पुरुषेण उद्धृतं, अन्यं पादं, पृथिव्यां पृथ्वीतले, तत् हरिविक्रमाख्यं उच्यते॥

कान्तस्य त्रिके आरोपितं पादमेकं तदा व्यापर (व्यायत) नामधेयम्॥

यदि सुन्दरी एवं कृशोदरी नायिका का एक चरण पुरुष ऊपर की ओर उठाते हुए दूसरा पैर पृथ्वी पर टिका हुआ रखकर रखे तो ऐसा बन्ध "हरिविकम बन्ध" कहलाता है।

इसी प्रकार प्रिय के पृष्ठ भाग पर एक पाद को स्थित रखते हुए जब स्त्री रहकर आलिंगन के साथ स्वयं शरीर को फैलाकर रखती हो तो यह "व्यायतबन्ध" करण कहलाता है[२]॥ १॥

नृहस्तयोः पादतले धृते तु
विषक्तकण्ठ्याऽर्पितनामधेयम्।

---

१. व्याघ्रावस्कन्द नामक यह करण अन्यत्र ग्रन्थों नहीं मिलता। इस करण की संज्ञा अन्वर्थक प्रतीत होती है।

२. यह करण अन्य शास्त्र ग्रन्थों में नहीं मिलता। व्यापार व्यायत करण का पंचसायक का विवरण इससे भिन्न है।

धृतं निजे वक्षसि वल्लभेन

स्त्रीपादयुग्मं प्रवदन्ति दोलाम् ॥ २ ॥

नृहस्तयोः पुरुषहस्तयोः, विषक्तकण्ठ्याः स्त्रियाः पादतले धृते सति, अर्पितनामधेयम् ॥ वल्लभेन निजे वक्षसि स्त्रीपादयुग्मं तदा दोलां प्रवदन्ति ॥ २ ॥

यदि पुरुष के दोनों हाथों में स्त्री को दोनों पैरों के तलों को (उठाकर) धारण किया जाए तो उसे "अर्पित-बन्ध" कहते हैं। इसी प्रकार पुरुष के द्वारा इन्हीं पैरों के दोनों तलों को अपने वक्षस्थल तक उठाकर रखे तो यही "दोलित-बन्ध" कहलाता है, क्योंकि इसमें शरीर का आन्दोलन होता है।[१]२ ॥

नार्या यदा बाहुविषक्तकण्ठ्या

नितान्तसंयोजितपादयुग्मम्।

स्थितस्य कुड्याश्रितनायकस्य

त्र्यस्रे तदा विद्धि वि(द्धव ?) लम्बिताख्यम् ॥ ३ ॥

बाहुविश(ष)क्तकण्ठ्याः बाहौ आसक्तकण्ठः यस्याः सा तस्याः नार्याः, त्र्यस्रे योनौ, स्थितस्य कुड्याश्रितनायकस्य नितान्तसंयोजितपादयुग्मं, तदा वि(अव ?)लम्बिताख्यं, विद्धि जानीहि ॥ ३ ॥

नृकुर्परद्वंद्वावलम्बजानुं

नितम्बिनीं बाहुविषक्तकण्ठीम्।

निवेष्टयेद्बाहुयुगेन मध्ये

स्थितः पतिः कूर्परजानुसंज्ञम् ॥ ४ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—उत्थितकरणानि सप्त—द्वात्रिंशः परिच्छेदः ॥]

मध्ये स्थितः पतिः, नृकुर्परद्वंद्वविलम्बजानुं बाहुविषक्तकण्ठीं नितम्बिनीं स्त्री, बाहुयुगेन वेष्टयेत्, तत् कूर्परजानुसंज्ञं ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

उत्थितकरणानि सप्त ॥७॥

---

१. इस अर्पित करण का ही अन्यत्र द्वितल नाम रतिरहस्य में मिलता है तथा दोलित, आन्दोलित तथा दोलायित ये सभी इससे भिन्न हैं।

यदि नायिका के द्वारा पुरुप के कण्ठ को थामकर स्थित रहने पर उसके दोनों पैरों के बीच में अतिशय श्लिष्टता के साथ जमकर या संयुक्त रहकर पीछे की दीवार-का सहारा लिये पुरुप के साथ तिरछी होकर यदि रमण किया जाए तो इसे "अवलम्बित" नामक करणवन्ध कहा जाता है[१] ॥ ३ ॥

यदि पुरुप के जानु तथा कूर्पर दोनों पर युवती स्त्री अपने दोनों जानुओं को लम्वा फैलाकर हिलाते हुए रखे और पुरुप की भुजाओं को कण्ठ से पकड़ती हुए यदि आवेष्टित या लिपटा कर रखते हुए रमण करे तो यही करणवन्ध "कूर्परजानुवन्ध"कहलाएगा ॥ ४ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में सप्त उत्थित करण नामक द्वात्रिंश परिच्छेद सम्पूर्ण)

——०——

यदङ्गुलीनां प्रविधाय कुञ्चनं
चतसृणामेव करोति मस्तके।
अनल्पतात्कारनिनादि ताडनं
स्मृतं विदग्धैरिह शब्दकर्तनम् ॥ १ ॥

यत् चतसृणामेव अंगुलीनां, कुंचनं, संकोचं, विधाय, मस्तके स्त्रीमस्तके, पुरुषः करोति, न अल्पं अनल्पं, टत्कार इति टात् वर्णात् स्वरूपे कारतकारौ, निनादि शब्दकारि, यत्ताडनं, मैथुनासनं(?) तत्, बुधैः पण्डितैः शब्दकर्तरि नाम स्मृतम् ॥ १ ॥

जब संगम दशा में चारों अंगुलियों को सिकुड़ा कर मस्तक पर उसके शब्द वाला प्रहार किया जाता है तो इस बड़ी आवाज को करने वाले ताड़न के शब्द को "शब्दकर्तन" नामक करण शास्त्रवित् कहते हैं[२] ॥ १ ॥

आबद्धमुष्ट्या यदि मुष्टिसंज्ञं
श्रोणीतटे पृष्ठतले विधेयम्।

---

१. इस बन्ध में पुरुष स्थित तथा स्त्री के पाद वलित या सिकुड़े हुए रहते हैं। जबकि रतिरहस्य आदि में इसकी इससे विपरीत स्थिति बतलाई गई है।

२. कामोद्दीपक तथा रागास्पदों में कारणभूत सी लूतादिका सीत्कृतादि में निमित्त माना जाता है जिन्हें यहां निरूपित किया गया है।

गण्डे पदाङ्गुष्ठतलेन हन्या-

तदा बुधा विद्धकमामनन्ति ॥ २ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—ताडनानि त्रीणि—त्रयस्त्रिंशः परिच्छेदः ॥]

श्रोणीतटे पृष्ठतले आबद्धमुष्ट्या मुष्टिसंज्ञं विज्ञेयम् ॥ गण्डे गण्डस्थले, पदाङ्गुष्ठतलेन हन्यात्, तदा बुधाः पण्डिताः, विद्धकं आमनन्ति कथयन्ति ॥ २ ॥

ताडनानि त्रीणि ॥ ३ ॥

यदि श्रोणी प्रदेश के तट पर हाथों की मुट्ठी बांधकर प्रहार किया जाए तो इसे "मुष्टि" कहते हैं तथा इसे या तो पीठ पर या श्रोणी तट पर प्रहार करहे हुए रखा जाता है। इसी प्रकार यदि पैर के अंगूठे के तल से गण्डस्थल पर प्रहार किया जाए तो इसे "विद्धक" कहा जाता है ॥ २ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में "त्रिविध" ताड़न नामक तैंतीसवां परिच्छेद समाप्त)

—o—

आदाय मुष्ट्या परिमर्दनं य-

त्तदुक्तमादीपितनामधेयम्।

स्पृष्ट्वा यदा हस्ततलेन विद्धं

तदोच्यते स्पृष्टकमग्रधीभिः ॥ १ ॥

आदाय गृहीत्वा, यत् मुष्ट्या परिमर्दनं, तत् आदीपितनामधेयं, उक्तं कथितम् ॥ स्पृष्ट्वा यत् हस्ततलेन विद्धं मर्दनं, तत्, अग्रधीभिः पण्डितैः स्पृष्टकं उच्यते ॥ १ ॥

यदि शरीर को (स्तनादि) लेकर मुष्टि के द्वारा चारों ओर मर्दन क्रिया की जाय तो इसे "आदीपितमर्दन" कहते हैं। जब हस्ततल के द्वारा स्पर्शन के साथ मर्दन होता है तो यह "स्पष्टकमर्दन" कहलाता है[१] ॥ १ ॥

१. इस परिच्छेद का विवरण दूसरे कामशास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं है। मर्दन स्थानों का स्मरदीपिका में उल्लेख मिलता है। यथा—भुजयोः स्तनयोश्चैव भगे नाभौ तथैव च। षट्सु स्थानेयु विधिना मर्दनं परिकीर्तितम् ॥ इति। तदनुसार ताड़न, मर्दन आदि का शास्त्र में विवरण दिया गया है अतः इन्हें प्रयुक्त किया जा सकता है।

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—मर्दनानि चत्वारि—चतुस्त्रिंशः परिच्छेदः ॥]

आकम्पमानेन, करेण हस्तेन, यत् मर्दनं, तत्, मनीषिभिः बुधैः, कम्पितं उक्तम् ॥ इतस्ततः, निपीड्यमात्रे(ने ?) निपीडने, मुनीन्द्रेण, समाक्रमाख्यं कथितम् ॥ २ ॥

मर्दनानि चत्वारि ॥ ४ ॥

जब हिलने वाले कर के द्वारा जो मर्दन किया जाता है तो उसे "कम्पितक" कहा जाता है। तथा इधर-उधर करते हुए यदि निपीड़न या दबाया जाना रखा जाए तो इसे "समाक्रम" नामक मर्दन कहा जाएगा ॥ २ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागर सर्वस्व में चतुर्विध मर्दन नामक चौंतीसवां परिच्छेद सम्पूर्ण)

——०——

यः सर्वगात्रेषु दृढं करेण
ग्रहस्तदा तं वद बद्धमुष्टिम्।
संवेष्ट्य यत्राङ्गुलिकां कचेन
वदन्ति तद्वेष्टितकं मुनीन्द्राः ॥ १ ॥

यः पुरुषः सर्वगात्रेषु दृढं यथा स्यात्, करेण, ग्रहः ग्रस्तं, तदा तं बद्धमुष्टिं वद ॥ कचेन केशेन, यत्र सुरते, अङ्गुलिकां संवेष्ट्य, तत् मुनीन्द्राः वेष्टितं वदन्ति ॥ १ ॥

जब पुरुष रतिकाल में शरीर के सभी भाग को दृढ़ता से ग्रहीत करे तो यह प्रकार "बलमुष्टि" कहलाता है, तथा अंगुलियों से शरीर को लपेट कर जो समस्त शरीर का ग्रहण किया जाए तो उसे मुनिजन "वेष्टिकक" कहते हैं[1] ॥ १ ॥

संग्रथ्य वामाङ्गुलिकाग्रहश्च
स्मृतं कृतग्रन्थिकनामधेयम्।
कण्ठे स्तनेऽङ्गुष्ठकतर्जनीभ्यां
तदा समाकृष्टिमुदाहरन्ति ॥ २ ॥

---

१. वेष्टिक आदि का विवरण भी अन्य ग्रन्थों में प्राप्य नहीं है। वेष्टिक एक कचग्रहण का भेद है।

इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—ग्रहणानि चत्वारि—पञ्चत्रिंशः परिच्छेदः ॥

संग्रथ्य, वामाङ्गुलिकाग्रहः ग्रहणं, कृतग्रन्थिकनामधेयं स्मृतम् ॥ कण्ठे, स्तने, अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां ग्रहणं, तत् आकृष्टिं बुधाः उदाहरन्ति ॥ २ ॥ ग्रहणानि चत्वारि ॥४ ॥

यदि अंगुलियों में बायीं अंगुलियों के द्वारा गूंथ कर ग्रहण होता है तो इसे "कृतग्रन्थिक" कहते हैं तथा यदि अंगुठा और तर्जनी के द्वारा कण्ठ या स्तंन का ग्रहण हो तो इस खींचने जैसे ग्रहण को विद्वान् "समाकृष्टि" कहते हैं[1] ॥ २ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में चार ग्रहण विधि नामक पैंतीसवां परिच्छेद सम्पूर्ण)

——०——

प्रवेश्यते तर्जनिका वराङ्गे
प्रवेशनं तत्करणं वदन्ति ।
सा मध्यमापृष्ठगता यदा स्यात्
विदुर्विदग्धाः कनकाभिधानम् ॥ १ ॥

वराङ्गे योनौ, तर्जनिका प्रवेश्यते, तत् प्रवेशनं करणं वदन्ति । सा तर्जनी मध्यमापृष्ठगता चेत्, तदा, विदग्धाः बुधाः, कनकाभिधानं, विदुः ॥ १ ॥

यदि संभोग दशा में बीच-बीच में स्त्री के गुप्त अंग में तर्जनी अंगुली का प्रवेश कराया जाय तो इसे "प्रवेश" नामक करण बन्ध कहते हैं। इसी में यदि मध्यमा अंगुली को तर्जनी की पीठ पर चढ़ा कर करिहस्तवत् प्रविष्ट कराया जाए तो यही प्रवेश मुनिजन "कनकप्रवेश" बतलाते हैं ॥ ३ ॥

तयोर्द्वयोः पृष्ठविपर्ययेण
वदन्ति धीरा विकनं तदेव ।
तते तु ते द्वे कथिता पताका,
तिस्त्रः सहानामिकया त्रिशूलः ॥ २ ॥

---

१. यह विवरण भी विलक्षण है। वास्तव में इस विधि में हाथों के नख छोटे रहना चाहिए अन्यथा गुप्तांग में क्षत होने पर अन्य रोगों की भी स्थिति निर्मित हो जाती है।

(श्लिष्टा यदा ताः शनिभोगमाहुः ॥ २ ॥)

इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—अङ्गुलिप्रवेशाः (षट्) षट्त्रिंशः परिच्छेदः ॥

तयोः द्वयोः तर्जनीमध्यमयोः, पूर्वोक्तविपरीतेन, तदेव, धीराः पण्डिताः विकनं वदन्ति । ते द्वे तटे(ते) विस्तृते पताका ॥ अनामिकया सह तिस्रः त्रिशूलः ॥ २ ॥ ताः तिस्रः अङ्गुलयः श्लिष्टाः (अ)विरलाश्चेत् शनिभोगमाहुः ॥ २ ॥

इसी प्रकार यदि तर्जनी और मध्यमा को उलटा कर विपरीत रखते हुए प्रवेश रखा जाए तो यह "विकन" नामक प्रवेश कहलाएगा। यदि अनामिका और मध्यमा को आगे फैलाकर प्रविष्ट करे तो यही प्रवेश पताकाप्रवेश तथा अनामिका अंगुली के साथ तीनों अंगुलियों को मिलाकर प्रविष्ट करवाएँ तो यही "त्रिशूल प्रवेश" कहलाएगा। इन सभी को एक साथ मिलाते हुए प्रविष्ट करवाया जाए तो यही "शनिभोग" प्रवेश माना जाता है ॥ २-३ ॥

(पण्डित पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में छः प्रकार के अंगुली प्रवेश नामक छत्तीसवां परिच्छेद समाप्त)

——o——

इति सुरतमनेकभेदभिन्नं
स्फुटमुदितं परिहृत्य फल्गु वाक्यम्।
त्रिविधमृगदृशां स्वरूपवेदि
मृदुखरमध्यमकर्म योक्तुमेतत्॥ १ ॥

इति अनेन प्रकारेण, अनेकभेदभिन्नं सुरतं, स्फुटं व्यक्तं, उदितम्। किं कृत्वा? फल्गु वाक्यं परिहृत्य। त्रिविधमृगदृशां स्वरूपवेदी पुरुषः, एतत् मृदुखरमध्यमकर्म योक्तुं योजनाकर्तुं कार्यम्। मृदु कोमलं, खरः तीक्ष्णं, मध्यमो मृदुखरसहितः। मृदु च खरश्च मध्यमश्च तत् मृदुखरमध्यमकर्म। स्त्रीभेदेन प्रयोगः कार्यः ॥ इति करणपरिपाटी षोडश ॥ १ ॥

इस प्रकार अनेक भेदादि से अनेक रूप वाले सुरत कर्मों का (एक्कीसवें परिच्छेद से सोलह परिच्छेद में) वर्णन किया गया। यह स्फुट रूप में इस प्रकार बतलाया कि इसमें स्पष्टता तथा अनपेक्षित वाक्यादि को न रख कर (स्पष्टतः) कहा गया है। जिससे यह तीन प्रभेद वाली स्त्रियों के स्वरूप को जानने वाले पुरुष के भी तीन भेद समझने वाले मृदु,

खर, मध्यम कर्म के साथ उपयुक्त योग या योजना करने में उपयुक्तता ले सके तथा जिसकी विचारपूर्वक समझ कर योजना की जा सके ॥ १ ॥

हर्तुं हृदयसर्वस्वं यदीच्छेद्भर्तुरङ्गना।
तदा विदग्धकामानामित्याचरितमारभेत् ॥ २ ॥

अङ्गना स्त्री। भर्तुः स्वामिनः, यत् हृदयसर्वस्वं कर्तुमिच्छेत्, तदा विदग्धकामानां पुरुपाणां इति आचरितं आरभेत् ॥ २ ॥

यदि युवती स्त्री अपने प्रिय स्वामी के हृदय को स्वाधीन करना चाहती हो तो उसे विदग्ध तथा कामसेवी पुरुषों के लिये शास्त्रनिर्दिष्ट कर्मादि का इस प्रकार आचरण रखना चाहिए ॥ २ ॥

कोशलं (कोमलं ?) धूपितं धौतं वस्त्रमग्राम्यमण्डनम्।
दधानाऽऽपीडसद्वेषं, वक्ति भूयः प्रियन्तिके ॥ ३ ॥

(दधाना, पीतसद्रूपवर्तिर्भूयाते प्रियान्तिके ॥ ?)

प्रियान्तिके स्वामिनिकटे, वर्तिः निकटवर्तिः, स्त्री भूयात्। कथंभूता स्त्री ? कौशलं कुशलयोग्यं धूपितं सुधूपितं, अग्राम्यमण्डनं ग्राम्यमण्डनशून्यं धौतवस्त्रं दधाना ॥ ३ ॥

ससाध्वसं च सस्नेह सव्रीडं संहसं तथा।
ईषद्दृश्यतनुर्नारी वसेत्कान्तं निरन्तरम् ॥ ४ ॥

ईषद्दृश्यतनुः, नारी, कान्त, सुनिर्भरं यथा स्वेत्तथा जयेत्, ससाध्वसं सस्नेहं सव्रीडं सहसं च जयेदित्यर्थः ॥ ४ ॥

वही स्त्री जब स्वामी के समीप जाए तो कुशलता से वस्त्र को धारण करे, जो वस्त्र सुगन्धित वस्तु से धूपित होकर सुन्दर गन्धवाला हो। वह अपने शरीर को भी नागरिक वेष में रखे जो बिलकुल भी ग्राम्यता से युक्त न रहे। उसका समग्र शरीर दिखलाई नहीं देना चाहिए तथा उसके भाव, भय या आशंका से,स्नेह से तथा मुसकान भरे हुए भी होना चाहिए। यह अपने प्रिय के आवास पर इसी भावना से उसके साथ निरन्तर निवास करे ॥ ३-४ ॥

आकर्षति पुनस्तस्मिन् रतानीकरते प्रिये।
जनयेदङ्गसंकोचं क्षणं साक्षाद्भयादिव ॥ ५ ॥

तस्मिन्, रतानीकरते रतस्य अनीकरते समूहरते, प्रिये कान्ते, आकर्षति सति, तदा अङ्गसंकोच, क्षणं व्याप्य जनयेत्, कस्मादिव ?साक्षाद्भयादिव ॥ ५ ॥

वह युवती इस भावना से जब अपने रतिभाव सम्पन्न प्रिय को आकर्षित कर ले तो फिर बाद में कुछ भय से शंकित सी होकर बाद में अंग वस्त्रों का तथा संकोच को भी थोड़ा शिथिल करे ॥ ५ ॥

प्रकान्ते सुरते पश्चात् क्रमाविर्भूतमन्मथा।
निःशङ्कमर्पयेद्गात्रमतिस्नेहादिव प्रिये ॥ ६ ॥

प्रिये कान्ते, सुरते, पश्चात् क्लमाभिभूतमन्मथा परिश्रमाभिभूतकामा, स्त्री, यद्गात्रं निःशङ्कभूतं अतिस्नेहादिव ॥ ६ ॥

आगे जब प्रिय के द्वारा उसी सुन्दरी युवती के साथ सुरत कर्म का प्रारम्भ करने के बाद फिर क्रमशः कामभाव के उत्पन्न होकर क्रमशः वृद्धि प्राप्त करने पर प्रिय को अतिशय स्नेह दिखलाती हुई अपने सम्पूर्ण देह को निश्शंकभाव से कामभाव में भर कर अर्पित करना चाहिए।

यद्यस्समीहते द्रष्टुं हन्तुं वा लिखितुं वपुः।
तत्तदापसरेच्छीघ्रं सोद्वेगं ढौकनीयं च ॥ ७ ॥

यद्यद्वपुः द्रष्टुं समीहते, हन्तुं लिखितुं वा समीहते, तदा तद्वपुः शीघ्रं अपसरेत् दूरीकरणीयं सोद्वेगं यथा स्यात्तया, पुनः ढौकनीयं प्रदेयम् ॥ ७ ॥

तब आगे प्रिय जो शरीर के अंगों को देखकर उनसे कुछ करने की इच्छा करे या शरीर पर नखक्षतादि से रति के मध्य करना चाहे तो उन सभी को बिना किसी संकोच के शरीर को अर्पित करे एवं संकोच को दूर करते हुए प्रदान करना चाहिए ॥ ७ ॥

कुर्यात्कूजितमामर्दे, दंशे सव्यथहुंकृतिम्।
नखक्षतेषु सीत्कारमाघाते स्तनितं स्फुटम् ॥ ८ ॥

आमर्दे मर्दने, कूजितं शब्दं कुयात्। दंशे दन्तदंशे, सव्यथं व्यथासंयुक्तं हुंकारं कुर्यात्। नखक्षते स्तनगण्डयोः आघाते शी(सी) त्कारं कुर्यात्।

वह सुन्दरी युवती रतिकाल मे स्तनादि शरीर के अंगों के मर्दन करने पर मुख से कूजित शब्दध्वनि करे तथा दन्तादि से दंशन करने पर व्यथा के साथ हुँकार की रोदनध्वनि करे, पुरुष के द्वारा शरीरादि पर नखक्षत करने पर सीत्कार शब्द को तथा स्तनादि से शरीर पर मन्द आघातों को देने पर स्पष्टरूप में स्तनितध्वनि को प्रकट करे ॥ ८ ॥

प्रस्विन्नवदना श्रान्ता मन्दहाकारनादिना।
आयासश्वासरोमाच्वं मुञ्चेत्तद्रागवृद्धये ॥ ९ ॥

प्रस्विन्नवदना स्वेदार्द्रमुखा, श्रान्ता परिश्रमातां, मन्दहाकारशब्दकारिणी, आयासं च श्वासं च रोमाञ्चं च मुञ्चेत्, तद्रागवृद्धये सुरतरागवृद्धये ॥ ९ ॥

मा मां निपीडयात्यर्थं न समर्थाऽस्मि निर्दय।
इत्येवं गद्गगदाव्यक्तं प्रियं ब्रूयान्नितम्बिनी ॥ १० ॥

नितम्बनी स्त्री, इत्येवं गद्गदाव्यक्तं यथा स्यात्, प्रियं स्वामिनं, ब्रूयात् इति किम् ? हे निर्दय, अत्यर्थं अतिशयेन, मां मा निपीडय अहं न समर्थाऽस्मि ॥१० ॥

वह युवती इस रति काल में पुरुष के अनुराग के संवर्धन के लिए शरीर की थकान, श्वास तथा शरीरगत रोमान्चों को भी प्रकट करे तथा मुख पर रतिश्रमजन्यस्वेद के कारण श्रान्त होने पर मन्द स्वर में हाहाकार करते हुए अपनी व्यथा को भी प्रकट करे। वह स्त्री ऐसे समय मुझे अतिशय दबा कर पीड़ित न करे तथा ऐसे कठोर भाव के कार्यों को सहने में मैं समर्थ नहीं हूं यह निवेदन अव्यक्त एवं गद्गदशब्दों में प्रिय पुरुप को बतलाती हुई अपने वचन कहे ॥१० ॥

वामत्वमनुबन्धं च प्रौढत्वमसमर्थता(म्) ।
कान्ताकूटं स्फुटं ज्ञात्वा सुरतेषु प्रदर्शयेत् ॥ ११ ॥

कान्तस्य, कूटं कपटं, स्फुटं यथा स्यात् तथा ज्ञात्वा, सुरतेषु प्रदर्शयेत्, तत्किं ? वामत्वं प्रातिकूल्यं, अनुबन्धं अनुरागं च प्रौढत्वं नायकत्वं, असमर्थता च ॥ ११ ॥

वह युवती अपने प्रिय की वृत्तियों में कपट भाव आदि को ठीक से समझते हुए उन्हें सुरतकाल में अपने कामभाव, अनुराग, प्रौढता आदि के साथ असमर्थता आदि को भी प्रिय को वतलाती हुई प्रकट करे।

धीरताविनयोच्छेदमश्लीलमसमञ्जसम्।
वृद्धिं याते रतावेगे व्यवहारं समारभेत् ॥ १२ ॥

रतावेगे सुरतभावे, वृद्धिं याते सति, तदा व्यवहारं समारभेत् । को वा व्यवहारः ? धीरतां विनयोच्छेदं विनयभङ्गं, अश्लीलं कदर्यं, असमञ्जसं अयोग्यम् ॥१२ ॥

वह रतिकाल के समय उसके बढ़ते हुए कार्यों में रहने के मध्य अपनी धीरवृत्ति, अविनयभाव, अश्लील चेष्टाएं, अयुक्त या अनुपयुक्त कार्यादि को भी व्यवहारवश दिखलाते हुए शुरू रखे ॥ १२ ॥

शिथिलाङ्गी निरुत्साहा सन्निमीलितलोचना।
प्र(नि ?) वृत्ते मोहने तिष्ठेत् स्वेदबिन्दुकणाचिता ॥ १३ ॥

मोहने मोहनसुरते प्रवृत्ते, एवंविशिष्टा तिष्ठेत्। एवं किं? शिथिलाङ्गी, निरुत्साहा आनन्दवर्जिता, संनिमीलितलोचना, स्वेदबिन्दुकणाचिता व्याप्ता ॥१३ ॥

वह मन को मुग्ध करने वाले तृप्तिकारी ऐसे सुरत कार्य के चलते हुए पूर्ण होने पर अपने शरीर को शिथिल कर स्थित रहे, अपने दोनों नेत्रों को आधे बन्द रखती हुई रहे तथा उत्साहरहित रहती हुई स्वेदयुक्त शरीर से सनी हुई हो मुग्धभाव में स्थित-रदे ॥ १३ ॥

नितम्बाच्छादितं शीघ्रं वैलक्ष्यं ललितं स्मृ(स्मि ?) तम्।
दृष्टिं खेदालसां कुर्याद्व्यक्तकेशविभूषणा ॥ १४ ॥

वैलक्ष्यं, शीघ्रं नितम्बाच्छादितं नितम्बं आच्छादितं नितम्बाच्छादितं, ललितं स्मृतं; खेदेन परिश्रमेण, अलसां दृष्टिं कुर्यात्, व्यक्तकेशविभूषणा ॥ १४ ॥

इस समय वस्त्रादि से आच्छादित नितम्ब देश को सुन्दर भाव में बिना लज्जा के रखना ही ललित भाव है। ऐसे समय केवल केशमात्र को स्पष्टतः सुन्दरता से प्रकट कर स्वेद या थकान से भरी दृष्टि को ही प्रकट करती रहे या ऐसी दृष्टि से ही अवलोकन करे ॥ १४ ॥

वात्स्यायनादिरचितं विशरीरशास्त्रं
यद्दृश्यते मृगदृशां मृदुतानिमित्तम्
सीमन्तिनीपुरुषयोरुभयोरिदं तु,
स्त्रीसेवनोत्कठिनता नियता हि लोके ॥ १५ ॥

विशरीरशास्त्रं—विगतं शरीरं यस्य स विशरीरः कामः, तस्य शास्त्रं विशरीरशास्त्रं; सीमन्तिनीपुरुषयोरुभयोर्निमित्तं यद्वात्स्यायनादिरचितं दृश्यते, तत्, मृगदृशां स्त्रीणां, मृदुतानिमित्तं कोमलनिमित्तं, हि निश्चितं, लोके स्त्रीसेवनोत्कठिनता नियता कथिता ॥ १५ ॥

वात्स्यायन आदि मुनिजन के द्वारा प्रणीत कामशास्त्र में जो स्त्री तथा पुरुष दोनों के निमित्त विवरण दिखलाई देते हैं, वे सभी स्त्रियों के मृदुलगुण के कारण ही निश्चित किये गये हैं, क्योंकि जगत् में स्त्रीजन के उपभोग या सेवन में तृप्ति की कठिनता ही नियत या निश्चयपूर्वक विद्यमान मानी जाती है ॥ १५ ॥

तत्कुट्टिनीमतमुदीक्ष्य वराङ्गनानां
कान्ते विधेयमबलाचरितं प्रदिष्टम्।
स्त्रीसौख्यलिङ्गमवधारयतां नराणां
चोक्तं स्वरागजननं सुतरामिहैव ॥ १६ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे—वामचरितप्रकाशो नाम—सप्तत्रिंशः परिच्छेदः ॥]

कान्तैः, पुरुषैः, कुट्टिनीमतं कोमलगतं, उदीक्ष्य प्रेक्ष्य, वराङ्गनानां तद्विधेयं अबलाचरितं प्रदिष्टं, स्त्रीसौख्यलिङ्गं अवधारयतां नराणां, इहैव, स्वरागजननं स्वस्य अनुरागं सुतरां अत्यर्थेन, उक्तं कथितम् ॥ १६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां नागरसर्वस्व-टीकायां वामाचरितप्रकाशो नाम सप्तदशः परिच्छेदः ॥

अतः युवा पुरुषों के द्वारा कुट्टनीमत जैसे ग्रन्थों को अनुशीलन कर देखते हुए ही उत्तम-लक्षण-सम्पन्न स्त्रीजन में इसके प्रयोग तथा विवरण रखे गये हैं और ऐसे ही विधान में स्त्रीजन की तृप्ति या संतोष की स्थिति निश्चित मानी जाने के कारण स्वराग की उत्पत्ति होती है, तथा इसी के अनुसरण से स्त्रीजन की संतोष एवं तृप्ति की स्थिति भी देखी गयी है, अतः इधर ही सभी का अनुराग देखा जाता है जिसे मैंने भी बतलाया है ॥ १६

(पण्डित पद्मश्री नागरसर्वस्व में वामाचरितप्रकाश नामक सप्तत्रिंश परिच्छेद सम्पूर्ण)

—०—

सुतार्थे बद्धचिन्तानामपुत्राणां मनोर्भुवाम्।
हिताय करुणासिन्धुः कथयामि सुतोदयम् ॥ १ ॥

सुरताबद्धचित्तानां अपुत्राणां मनोर्भुवां पुरुषाणां, हिताय, (इदानीं) सुतोदयं सुतोत्पत्तिं कथयामि, कथंभूतोऽहं ? करुणासिन्धुः ॥ १ ॥

अब मैं सुत प्राप्ति की इच्छा रखने वाली पुत्रहीन मनुष्यों के हितार्थ करुणावश सुतोत्पत्ति की विधि आदि को बतलाता हूं ॥ १ ॥

रजःस्नानदिने दत्त्वा भिक्षुसंघातभोजनम्।
शक्तितो दक्षिणां दत्त्वा प्रार्थयेद्वरमीप्सितम् ॥ २ ॥

रजःस्नानदिने, भिक्षुसंघाय समूहाय, भोजनं दत्त्वा, यथाशक्ति दक्षिणां च दत्त्वा, ईप्सितं वरं प्रार्थयेत् प्रार्थनां कुर्यात् ॥ २ ॥

अपनी धर्मपत्नी के रजस्नान के दिन धर्मभाव से भिक्षुगण को भोजन प्रदान करे तथा उन सभी भिक्षुगण को शक्ति के अनुरूप दक्षिणा प्रदान कर उन्हीं से अपनी इष्टवस्तु पुत्र की प्राप्ति का वर प्रार्थित करे ॥ २ ॥

तदोषधं पिबेत्कान्ता तारापूजापुरःसरम्।
कान्तया सहितो रात्रौ पुत्रार्थी विधिमुच्चरेत् ॥ ३ ॥

तदौषधिं वक्ष्यमाणौषधिं, कान्ता स्त्री, तारापूजापुरःसरं पूर्वकं पिबेत्। कान्तया सहितः, रात्रौ पुत्रार्थी, पुरुषः, विधिमुच्चरेत् ॥ ३ ॥

तब पुत्र की कामना से पुरुष युवती भार्या के साथ तारादेवी की अर्चना कर वैद्य आदि के द्वारा निर्दिष्ट औषधि को प्राप्त कर रात्रि में दोनों ही उसका पान करें या सेवन करें ॥ ३ ॥

समसौख्यं निरुन्मेष(पः ?) प्रयोगेषु यथा सुधीः।
धैर्यवान्मोहनात्पूर्वं तारापादाम्बुजं स्मरेत् ॥ ४ ॥

सुधीः, निरुन्मेषप्रयोगेषु अनिमीलितलोचनेषु, स्त्रीपुरुषयोः समसौख्यं, मोहनात् सुरतात् पूर्वं तारापादाम्बुजं स्मरेत् ॥ ४ ॥

तब पुरुष विवेक के साथ तारादेवी के चरणकमल का स्मरण करते हुए एवं दोनों अपने नेत्रों को थोड़ा बन्द रखते हुए समान सौख्य के दाता मोहनमय रतिकर्म को सुतादि के लिये सम्पन्न करें ॥ ४ ॥

यदा सूर्येण मार्गेण देहे वहति मारुतः।
संचोद्य नाडिकां पुत्रीं पश्चान्मोहनमाचरेत् ॥ ५ ॥

यदा, सूर्येण मार्गेण पिङ्गलानाड्या, मारुतो वहति, दक्षिणश्वास, इत्यर्थः, पुत्रीनामधेयां नाडिकां, संचोद्य चालयित्वा, पश्चात् मोहनसमाचरेत् ॥ ५ ॥

जब सूर्यमार्ग से पिंगला नाड़ी के साथ शरीर के प्राणवायु का संचरण रहे (अर्थात् दक्षिण नासापुट से श्वास चलता हो) तो पूर्व निर्दिष्ट पुत्री नामक मदनाड़ी को प्रेरित कर रतिकर्म सम्पन्न करे (जिससे पुत्र की ही उत्पत्ति हो सके) ॥ ५ ॥

करवीरकुसुमैर्देवीमार्यतारां वरप्रदाम्।
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु मन्त्रं सप्तशतं जपेत् ॥ ६ ॥

कुसुमैः पुष्पैः, आर्यतारां माननीयताराम् ॥ ६ ॥

इसके पश्चात् वह देवी आर्यतारा को इष्ट वरदान के लिये करवीर के पुष्पों से त्रिकाल अर्चन कर सात सौ मन्त्र का जाप करे। जप का मन्त्र है—"ॐ अम्वे मोह स्वाहा" ॥ ६ ॥

मन्त्रस्त्वयम्—ॐ जम्भे मोहय स्वाहा।
पञ्चशिष्या(क्षा ?) परो भूत्वा मासमेकं तथाऽर्चयन्।
वंशोद्योतकरं पुत्रं लभते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

पञ्चशिष्यापदी (शिक्षापरः ?) भूत्वा, आसनमुद्राप्राणायामपूजाजपाः एवंप्रकारेण पञ्चशिक्षापरो भूत्वा, एकं मासं, अर्चयन्, वंशोज्ज्योतकरं पुत्रं, लभते, अत्र न संशयः ॥ ७ ॥

और वह बौद्धागम के अनुगत पांच धर्म या शिक्षाओं का पालन करते हुए (आसन, मुद्रा, प्राणायाम, पूजा तथा जप कर्म की पांच शिक्षा का अनुगमन कर) एक मास तक इसी प्रकार देवी तारा का पूजन करे। इससे उसे वंश को प्रकाशित करने वाला पुत्र निश्चित रूप से प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

उषित्वा, लक्ष्मणामूलं तन्मन्त्राधिष्ठितं पिबेत्।
सुरम्या एकवर्णायाः पयसा सवली(शवली ?) कृतम् ॥ ८ ॥

मासमात्रमुषित्वा, लक्ष(क्ष्म)णामूलं, तारामन्त्राधिष्ठितं तारामन्त्रजप्तं, एकवर्णायाः, सुरभ्याः गोः, पयसा दुग्धेन, सवलीं(शवलीकृतं ?) मिश्रीकृतं पिबेत् ॥ ८ ॥

तदौपधिप्रभावेन शुक्रवृद्धिः प्रजायते।
पिण्डाच्छुक्राधिकात्पुत्रः कन्या रक्ताधिकाद् भवेत् ॥ ९ ॥

तदौषधिप्रभावेन, शुक्रवृद्धिः वीर्यवृद्धिः, प्रजायते। वीर्याधिकात्पुत्रः भवेत्, रक्ताधिकात् कन्या भवेत् ॥ ९ ॥

तब इस विधि के साथ एक दिन उपवास रख कर रहते हुए तारादेवी के मन्त्र से अभिमन्त्रित एक रंग वाली गौ के दुग्ध से मिश्रित लक्ष्मणा नामक औषधि की जड़ के चूर्ण को (स्त्री के ऋतुकाल के अन्तिम दिन) पुरुष सेवन करे। इस औषधि के प्रभाव से शुक्र की वृद्धि होती है तथा शुक्राधिक्य के कारण पुत्र की प्राप्ति तथा रजोधिक्य के कारण कन्या की प्राप्ति होती है ॥ ८-९ ॥

तीर्थिको यदि पुत्रार्थी भूदेवान्भोजयेत्तदा।
दक्षिणां शक्तितो दत्त्वा विदध्याद्वरयाचनम् ॥ १० ॥

तीर्थिको, यदि कदाचित्, पुत्रार्थी, भूदेवान्, ब्राह्मणान्, भोजयेत्। शक्तितः दक्षिणां दत्त्वा वरयाचनं विदध्यात् ॥ १० ॥

यदि ब्राह्मण आदि पुत्र की इच्छा रखते हों तो इन्हें बौद्ध भिक्षुओं के स्थान पर ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए। वह भोजन के बाद इन्हें अपने सामर्थ्य के अनुरूप दक्षिणा देकर इन्हें अभीष्ट वर प्रदान की प्रार्थना कर आशीष प्राप्त करें ॥ १० ॥

फलमूलाशनो भूत्वा पार्वतीपरमेश्वरौ।
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु मन्त्रमेतज्जपेत्तदा ॥ ११ ॥
ऊँ नमो भगवते महेश्वराय, नमः प्रजाजननाय, स्वाहा ॥

फलमूलभोजनो भूत्वा, पार्वतीपरमेश्वरौ त्रिसंध्यं पूजयित्वा, एतन्मन्त्रं जपेत् ॥

॥ मन्त्रस्तु —ऊँ नमो भगवते महेश्वराय मम प्रजाजननाय स्वाहा ॥

वह विप्र फल एवं मूलादि का अशन कर उपवास रखे तथा पार्वती देवी एवं शिवदेव की त्रिकाल अर्चना करने के बाद मन्त्र का जप सात सौ बार करे। मन्त्र है—"ऊँ नमो भगवते महेश्वराय, नमः प्रजाजननाय स्वाहा" ॥ ११ ॥

परदाराभिगमनं मद्यमांसादिभोजनम्।
मिथ्याभिलपनं हास्यं मानं क्रोधं च वर्जयेत् ॥ १२ ॥

मिथ्याभिलपनं मिथ्याकथनम् ॥ १२ ॥

तब इन धर्म कार्यों को पालन करते हुए वह पवित्र भावना से रहे। वह अन्य स्त्री के अभिगमन, मद्यमांसादिवर्ज्य पदार्थों का सेवन तथा असत् एवं मिथ्या आचार तथा कथनों का भी परित्याग करे तथा काम, क्रोध आदि भावों से मन को हटा कर रखे ॥ १२ ॥

तदा स्नात्वा सचैलस्तु सुधौतवसनः कृती ।
मन्त्रमेतं जपेन्नित्यं न निद्रां समुदाहरेत् ॥ १३ ॥

सचैलेन वस्त्रेण स्नात्वा, सुधौतवसनः, कृती, एतं मन्त्रं, नित्यं जपेत्, न निद्रां गच्छेत् ॥ १३ ॥

वह पवित्र भाव से वस्त्रसहित स्नान कर धौतवस्त्र को धारण कर व्रत रखते हुए नित्य इसी मन्त्र का जप करता रहे तथा निद्रा को भी दूर रखे ॥ १३ ॥

हेमतारकताम्राणि एकीकृत्य सुसर्पिषा ।
दातव्यं लेहनं स्त्रीणां क्षेत्रशुद्धिस्तथा भवेत् ॥ १४ ॥

हेम सुवर्णं, तारकं रजतं, ताम्रं च, एकीकृत्य, सुसर्पिषा गव्यघृतेन तु स्त्रीणां लेहनं दातव्यं, तदा क्षेत्रशुद्धिः, भवेत् ॥ १४ ॥

तह स्त्री के क्षेत्र की वीजधारण की क्षमता के वर्धनार्थ वह सुवर्ण, रौप्य तथा ताम्र की भस्म को समभाग में मिलाकर गोघृत के साथ स्त्री को चटावे ॥ १४ ॥

शेषं तु पूर्ववत्कुर्वन् कृतार्थो नियतं भवेत् ।
सत्पुत्रालोकनात्यन्तप्रीतिस्तिमितलोचनः ॥ १५ ॥

शेषं कर्म, पूर्ववत्, कुर्वन्, नियतं निश्चयेन, कृतार्थं भवेत् । कथं कृतार्थः तदेवाह—शोभनः पुत्रः सत्पुत्रः, सत्पुत्रस्यालोकनेन अत्यन्तप्रीतिस्तया स्तिमिते लोचने यस्य सः, तथा चोक्तं स्मृतौ—"लोकं जयति पुत्रेण पौत्रेण नरकं जयेत् । अथ पुत्रस्य पौत्रेण परमानन्दमश्नुते" ॥ १५ ॥

इस प्रकार सभी कार्य सम्पन्न होने पर निश्चित रूप से वह पुरुप पुत्र प्राप्ति के कारण सिद्ध प्रयोजन होकर अपने उत्तम पुत्र को अतिशय स्नेह भरे प्रीतिपूर्ण लोचनों से देख कर आदि को कृतार्थ करते हुए प्रसन्न भाव में कृतार्थ जीवन चला लेता है ।। १५ ॥

विविधविधिविधानं देवतामन्त्रपूजा-
दयितयुवतिशिक्षासत्प्रतिग्राहकाणाम् ।
प्रथममुदितमस्मिन्वीक्ष्य सिद्धैकवीरं
परममतिरहस्यं शाङ्करं कामतन्त्रम् ॥ १६ ॥

एतत्कामतन्त्रं, परमं श्रेष्ठं, अतिरहस्यं गोपनीयं, पुनः किंभूतं ? शाङ्करं शङ्करेण कृतं, कुतः ? यतः देवतामन्त्रपूजा, द्वितयविधविधानं प्रकारद्वयविधानम्; यतः दयितयुवतिशिक्षा, सत्प्रतिग्राहकाणां शोभनजनानां, अस्मिन् नशास्त्रे वीक्ष्य

सिद्धैकवरं प्रथमं उदितं कथितं अर्थात् अस्मिन्शास्त्रे साधनात्सिद्धः प्रसिद्धः एकवीरः श्रेष्ठवीरो भवति ॥ १६ ॥

यह नागरसर्वस्व नामक ग्रन्थ कामशास्त्रीय ग्रन्थ परमश्रेष्ठ तथा रहस्यवत गोपनीय विद्या वाला है तथा श्री महेश्वर शिव के द्वारा उपदिष्ट है जिसमें दोनों प्रकार (पारस्परिक वेदादि शास्त्र की देवता की एवं तान्त्रिक पूजा विधान बतलाये गये हैं। अतः यह प्रिय मनुष्य तथा युवती स्त्री को शिक्षा देकर ये ऐसे उत्तम पुरुष एवं स्त्री को शास्त्रानुगामी बनाता है कि शिक्षा इस शास्त्र के साधन से सिद्ध एकवीर रूप पुत्र को प्राप्त करवाता है (जो सत्वप्रतिष्ठापक) ॥ १६ ॥

आसीद्ब्रह्मकुले कलाग्रनिलयो यो वासुदेवः कृती
तस्या स्नेहवशाच्चिरं प्रतिमुहुः संप्रेरणात् साम्प्रतम् ।
दीप्तेयं रतिशास्त्रदीपकलिका पद्मश्रिया, धीमते
हृद्यार्थान्प्रकटीकरोतु जगतां संहृत्य हार्दं तमः ॥ १७ ॥

यः वासुदेवः ब्रह्मकुले ब्राह्मणकुले आसीत्, सः कथंभूतः ? कलाग्रनिलयः, पुनः कथंभूतः ? कृती पण्डितः; तस्या स्नेहवशात्, मुहुर्वारंवारं, साम्प्रतं इदानीं, पद्मश्रियो नामधेयस्य, धीमतः पण्डितस्य, इयं रतिशास्त्रदीपकलिका कामशास्त्रदीपकलिका, दीप्ता प्रज्वलिता, जगतां हार्दं तमः हृदयसंबन्धि अन्धकारं, संहृत्य दूरीकृत्य, हृद्यार्थान् शोभनार्थान्, प्रकटीकरोतु प्रकाशयतु ॥ १७ ॥

उत्तम विप्रकुल में उत्पन्न एक वासुदेव नामक श्रेष्ठ पण्डित था जो कलादि शास्त्रों में पारंगत था। उस पर स्नेह रखकर तथा उसके द्वारा बार-बार आग्रह एवं प्रेरणा देते रहने के कारण अब यह कामशास्त्र के तात्पर्य को प्रकाशित करने वाली दीपक ज्योति की तरह दीप्त यह नागरसर्वस्व नामक ग्रन्थ पण्डित पद्मश्री के द्वारा बनाया गया जो संसार में आन्तरिक अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर सभी उत्तम पदार्थों की प्राप्ति की तरह इसके आशयों को प्रकाशित करता रहे ॥ १७ ॥

राजा धर्मरतोऽस्तु निर्जितरिपुः षड्वर्गवश्यो वशी,
निःक्लेशाः कृतिनो भवन्तु मुदिताः सत्कारलाभान्विताः ।
अन्योन्यप्रियताप्रसन्नमनसः सर्वत्र सन्तु प्रजा,
नित्यं तिष्ठतु सर्वसत्त्वनिचयैः सम्पूरिता मेदिनी ॥ १८ ॥

[इति पण्डितपद्मश्रीविरचिते नागरसर्वस्वे सुतोदयो नाम अष्टात्रिंशः परिच्छेदः ॥]

राजा धर्मनिरतः अस्तु, राजा किं विशिष्टः? निर्जितरिपुः निर्जिता रिपवो येन सः, षड्वर्गाः षड्गुणाः वशे यस्य सः, "सन्धिर्ना विग्रहो यानभासनं द्वैधमाश्रयः। षड्गुणाः" इत्यमरः। पुनः किंभूतः? वशी जितेन्द्रियः। कृतिनः पण्डिताः, सत्कारलाभान्विता मानलाभसंयुक्ताः, मुदिताः हर्षिताः, निःक्लेशाः क्लेशरहिताः, सन्तु भवन्तु। प्रजाः अन्योन्यप्रियताप्रसन्नमनसः सर्वदा सन्तु। मेदिनी सर्वसत्त्वनिचयैः संपूरिता तिष्ठतु॥ १८॥

जगज्ज्योतिर्मल्लभूपैर्ग्रन्धाननेकान् विलोक्य च।
इयं नागरसर्वस्वटीका यत्नेन साधिता॥

इति महाराजाधिराजश्रीश्रीजगज्ज्योतिर्मल्लभूपविरचितायां
नागरसर्वस्वटीकायां अष्टादशः परिच्छेदः समाप्तः॥

—०—

पृथ्वी पर सभी राजा धर्म पालन में लगे रहें तथा ये सदा सन्धि आदि छः गुणों को स्वाधीन रखकर अपने शत्रुओं पर सदा विजय प्राप्त करते रहें तथा इन्द्रियजयी रहें। पण्डितजन सदैव क्लेशहीन होकर सत्कार को प्राप्त कर लाभ पाते हुए प्रसन्न रहें। प्रजा भी परस्पर एक दूसरे को प्रिय लाभ करवा कर प्रसन्न मन से सर्वत्र रहें तथा सम्पूर्ण पृथ्वी भी सभी उपयुक्त धान्यादि के समूह से सदापूर्ण रहे॥ १८॥

(पण्डित् पद्मश्री विरचित नागरसर्वस्व में सुतोदय नामक अड़तीसवां परिच्छेद सम्पूर्ण तथा ग्रन्थ भी समाप्त)

इति पदवाक्यप्रमास-पारावारीण-भारद्वाजकुलजलधिकौस्तुभ-पण्डित नन्दकिशोरशुक्लसूनु-श्रीवावूलालशुक्लशास्त्रिप्रणीतनागरसर्वस्वग्रन्थस्यानाविला नाम हिन्दी व्याख्या परिसमाप्ता विक्रम संवत् २०५० वत्सरे शुभम् अस्तु॥

॥ शुभम् ॥

परिशिष्ट—१

नागरसर्वस्वे समुपन्यस्तानां ग्रन्थ-ग्रन्थकाराणां निर्देशनामानुक्रमणिका

नामादिकम्	स्थाने	पृष्ठे
कामतन्त्रं शाङ्करम्	(३८.१६)	१२२
कुट्टिनीमतम्	(३७.१६)	११८
पद्मश्रीः	(१.२, १९.११, १९.१४, ३८.१७)	२, ७५, ७९, १२४
महेश्वरः	(१-५, १६-६, १६-१५, १७-८)	४, ६४, ६७, ७०
रत्नकुमारः	११.२	२९
रत्नशास्त्रम्	३.६	१२
लोकेश्वरः	४.२	१४
वात्स्यायनः	३७. १५	११७
वासुदेवः	३८.१७	१२३
सिद्धैकवीरः	३८.१६	१२२

परिशिष्ट—२

नागरसर्वस्वस्थपद्यानां पद्यार्धानुक्रमणी

पद्य	पृष्ठे		
अंसोत्क्षिप्तार्धहारा	४५	अभिनववस्तूपहतावपि	३८
अकुटिलमतयश्चरित्र	७८	अरुणगूढमपि कीर्तित	९२
अङ्के स्थिताथ शयने	९१	अभिलाषस्तथा चिन्ता	५७
अङ्गुष्ठतर्जनीमध्या	२३	अपि श्रेयश्चिन्त्यं	३८
अङ्गुण्ठमूलात् प्रभृति	६९	अरक्षिता ह्यात्मपति	६१
अङ्गुष्ठमूलाश्रितनाडिका	७२	अरोमकाः सतिलका	६४
अङ्गुष्ठमूलेषु अआ	६९	अलिपक्षं काकजिह्वा	३३
अङ्गुण्ठस्योर्ध्वरेखान्तः	२३	अलोमकत्वं कक्षेण	६४
अञ्जयेच्चक्षुरमीभिः	३४	अवसरेऽञ्जलिर्ज्ञेयः	२३
अतिस्नेहे च सूक्ष्मैला	२४	अविदितयुवतिकृतैक	२९
अत्युच्चमश्वमृग्योः	५६	अव्यक्तरेखैर्नखै	८५
अथाभिधास्ये मधुर	९५	अश्वगन्धां वचाकुष्ठं	३२
अनल्पतात्कारनिनादि	१०९	अश्रुपातांगुलीमर्द्दौ	५८
अनास्था वस्तूनां	३९	अष्टांशवंशलोचन	१६
अनुच्चैः पूर्वाङ्गं	१०६	असतीचोदनाच्चैव	७६
अनेकवाद्यं विविधा	८	असतीचोदनान्नारी	७५
अन्तर्लिङ्गस्पर्शा	५६	आकम्पमानेन करेण	११०
अन्यथा तत्सुखोच्छित्ति	६५	आकर्षति पुनस्तस्मिन्	११४
अन्यथा हि न सुखस्य	८३	आकृष्ट नीलीरस	१३
अन्योन्यप्रियताप्रसन्न	१२३	आक्रम्य पादमबला	९०
अपूगपर्णमप्रीतौ	२७	आक्रम्य यत्र जघनं	९२
अप्राप्तवल्लभसमागम	४०	आक्षिप्य कालवचनं	४०
		आघाते मर्दने वा	८२

आचारहीनाः कृतघात ८०
आदाय मुष्ट्या परिमर्दनं ११०
अद्येयामेऽपि शंखः २२
आबद्धपर्यङ्कपदक्रियाया ९८
आबद्धमुष्ट्या यदि मुष्टि १०९
आयासनिःश्वासनिरोध ८४
आयासश्वासरोमाञ्चं ११५
आरोग्यसौभाग्यफला ११२
आरोपितं पादयुगेन १००
आरोप्यते तत्र यदैक ९८
आलम्ब्य हर्षमबला ३९
आलापवेषगतिहास्य ४१
आलापः स्मित कौमुदी ४६
आलिङ्गने चित्ररता ८०
आलिङ्ग्य वामेन भुजेन १०१
आसज्य स्वयमेव ३७
आसीद् ब्रह्मकुले कलाग्र १२३
आसीनकान्तत्रिकपाद १०४
आसीने लालयेद् बालां ६५
आस्तां नाम शुभे ४०
इसस्ततो यत्र निपीड ११०
इति चिन्तितमात्रेण ७०
इति नरैर्विविधा परि ६७
इति नवधा रतमुदितं ५६
इति सुरतमनेकभेद ११३
इत्याकर्ण्य कथां हरस्य ४७
इत्यादि वाच्यमविभाव्य ४६
इत्येवं गद्गदाव्यक्तं ११६
ईषत्प्रहसितो मन्दं ३६
ईषद्दृश्यतनुर्नारी ११४
उच्चारितानां क्रमशः ७१
उच्चैः मृदुगुह्यान्त ५६
उच्छूनकं स्यादधरे ८७
उच्छ्वासदन्तौष्ठ्यज उत्तारानामिका चैव २३
उत्थिते चाभिरूढा च ६५
उत्पद्यते यत् स्मितवीक्षितं ८३
उद्यानदीर्घनटयुद्ध ६१
उद्वर्तनमिदमुत्तमं १८
उन्नासितोष्ठेन मुखेन ९३
उभयोश्चोदनात् सूते ७७
उभयोः समस्तमुदितं ५५
उषित्वा लक्ष्मणामूलं १२०
ऌजाधरे ए ६९
एककरञ्जोदरकृत ३२
एकतोलिङ्गकौमल्या ५५
एकाश्रितं कुञ्चितमेक ९९
एतानि निश्शब्दनिकु ९५
एतान्ययलसाध्यानां ५८
एकं स्नेहे तथा चैव २६
एवं प्रलोभिता नारी ६७
एवं संचोदिता नारी ७७
ओष्ठे कपोले नयने ६८
कक्षपादगतं तुच्छं ५५
कचदंशसस्तु कामार्त्ता २३
कण्ठं निजं बन्धुरयेत् १०२
कण्ठे क एष तव वल्लभ ४६
कण्ठे स्तनेऽङ्गुष्ठकतर्जनी १११
कण्ठोपकण्ठोल्लसिता ७
कण्डूव्यपनयनपटोः ५७
कथमपि यदि सङ्गम २९
कदलीजं फलं वैश्ये २१
कनिष्ठमूलमारभ्य २३
कपोलदेशे स्तनमण्डले च ८७
करवीरकुसुमैर्देवीमा ११०

कराङ्गुलिक्षेपविधि	८१	के द्रुमास्ते क्व वा	४९
कराङ्गुलिकृत्रिमलिङ्ग	८०	केशगृहालिङ्गन	८१
कर्णकण्डूयनं स्त्रीणां	४७	केशस्तनादिग्रहणे	४८
कणोरुपार्श्वत्रिक	७२	कौर्मं यदोत्तानरतौ	९७
कर्पूरागरु चन्दनमुस्तक	१८	कौशलः स्नेहबाहुल्ये	२७
कल्पकलापैश्च युतं	१९	कौशलं धूपितं धौतं	११४
कस्तूरीकर्पूरं कुङ्कुम	१५	कौशलाङ्कुशकन्दर्प	२७
कस्तूरीकर्पूरं कुङ्कुम	१७	क्रन्दत्यबाष्प हृदये	३९
कस्तूरीकर्पूरं चन्दन	१८	क्रमवर्धितं त्वगेला	१६
कस्तूरीसंयुक्तं स्नानीयं	१७	क्रमवृद्धिभागचितं	१५
कान्तस्य गुणसौभाग्य	५८	क्रमवृद्धिभागरचिता	१८
कान्ताकूतं स्फुटं ज्ञात्वा	११६	क्रोधः स्मितञ्च कुसुमा	४०
कान्तात्रिकारोपितपाद	१०७	क्रोधोत्कम्पममर्पयत्त्य	३७
कामं त्यक्त्वात्मनः	४	क्लीबोऽपि हृदयं तस्या	६७
कामज्वरे कटुद्रव्यं	२४	क्लीवोऽपि हृदयं सर्वे	६१
कामुके भ्रमरः प्रोक्त	२१	क्षेमं नयति योग्या स्त्री	६४
कामोऽहं भावयेत् कामी	६५	क्षेमप्रश्ने कर्णलता	२३
कालोचितैर्धूपितधौत	७	खद्योतपृष्ठ-नवशाद्वल	१३
किं कान्त निर्दयतरं	४८	खर्वा स्थूला प्रकटदशना	५४
किञ्चिच्च खिन्नरुदितेन	९०	गण्डे पदाङ्गुष्ठतलेन	१०९
किञ्चिच्च दीर्घा क्षति	८६	गन्धसागरुगुग्गुलु	१९
किञ्चिदभ्यन्तरे चैव	७५	गाढोपगूढनवशेन	९१
किमपि रसिकचित्त	८१	गिरिकुहरवनेषु	७९
कुड्याश्रयेषु परिपीडन	९१	गुणवद्गुणसम्पदां प्रसूतिः	१२
कुर्यात् कूजितमामर्दे	११५	गुणाः सुरुग्गौरव	१०
कुर्यादार्दो यदि स्नेहं	३२	गोदुग्धेन पिबेत् स द्वि	३२
कुष्ठतगरजातीफल	१७	गोरोचना पियङ्गुमनः	३४
कुसुमशररूजाविकीर्ण	६०	गोरोचना शूकरशोणितेन	३३
कूर्मोदरं मृदुगिरञ्च	५२	घन-चन्दन-जातीफल	१६
कृपान्वितो मन्मथ	३	घनाः सुदीर्घा रदना	८९
कृष्णे तु पक्षे चरणा	६९	चतुरस्त्राभिधानो यो	२७
केचिद् भाषान्तर	२	चन्दनगुडकं क्रमशो	१५

चरणजघनहस्ते	५१
चिकित्सयति यो नित्यं	४
चुम्बाभिलाषाः सततं	८०
चूर्णे यदेषां निजबीज	३५
चेतो न कस्य त्ठलितं	५०
चेष्टां विचार्य निभृतं	६२
छन्नश्चन्द्रो निशीथिन्यां	२२
छिन्नवस्त्रं तु विच्छेदे	२६
जगज्योतिर्मल्लभूपै	१२३
जगत्त्रिवर्गप्रभवं	५
जङ्घाद्वयेनैव नरस्य	१०३
जडता मरणं चेति	५७
जनयेदङ्गसङ्कोचं	११४
जातिफलकस्तूरीकर्पूरं	१६
जिह्वाग्रमात्रस्य विचूषणं	९६
ज्ञानेऽस्य शास्त्रस्य	४
तं गोपयेद् भूतदिने स्मशाने	३५
तं बन्धुदुःखामयबन्धु	१०
तज्जानुजङ्घान्तर	९८
ततः परं च तरुणी	६३
तते तु ते द्वे कथिता	११२
ततोऽन्यचिन्तां परिहृत्य	२०
तत्कुट्टिनीमतमुदीक्ष्य	११८
तत्तदापसरेच्छीघ्रं	११५
तत् पद्मश्रीविरचित	२
तत्पृष्ठसङ्गतभुजान्य	९०
तत्र चैकविषये प्रयु	८२
तत्र स्त्रियश्च काठि	३०
तथाह्वानेऽङ्कुशचापि	२२
तथोदितं हृज्जघनोरू	९४
तदञ्जनेनाञ्जितलोच	३४
तदपि निरवशेषकाम	२९
तदा विदग्धकामानां	११४
तदा स्नात्वा सचैलस्तु	१२१
तदुदितवनिताजनस्य	७८
तदूर्ध्वमधिरूढा स्यात्	६३
तदोषधं पिबेत्कान्ता	११९
तदौषधिप्रभावेण	१२०
तदण्डकाख्यं विषमैश्च	८८
तनौ तल्पलीने	१०६
तन्व्या नरेणोद्धृतपाद	१०७
तमामनन्ति विक्षेपं	४४
तदा तुल्यसुखं चैवं	६६
तयोर्द्वयोः पृष्ठ-विपर्ययेण	११२
तल्पे वितन्वदवदवगूहन	९१
तस्याङ्घ्रिद्वितयं नमन्ति	४७
ताम्बूलवीटकाः पञ्च	२७
तारुण्यमोहमदस्वजनोपं	६२
तीक्ष्णतरस्तु निःश्वास	३६
तीक्ष्णाश्रिधारत्व	११
तीर्थिको यदि पुत्रार्थी	१२०
तृणवदूर्जितजीवित	६७
तृप्तिर्न तासां तु	७२
तेन सावश्यमायाति	६६
त्रिके तुण्डे स्थिता पुत्री	७७
त्रिगुडा काक्षिकवासो	१५
त्रिविधमृगदृशां	११३
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु	११९
त्रिसन्ध्यं पूजयित्वा तु	११७-१२१
त्वगरुमुस्तकतगरं	१७
दक्षिणां शक्तितो दत्वा	१२०
दधाति वामोरूयुगंकरा	१०१
दधानापीडसद्वेषं	११४
दध्यादुरः स्थितभरं	९२

दयितस्य कथारम्भे	४७	नखकर्पूर-कुङ्कुमागरु	१५
दाडिमन्तु द्विजे ज्ञेयं	२०	नखक्षतेषु सीत्कार	११५
दातव्यं लेहनं स्त्रिणां	१२१	नखदशनपदे विरुक्त	७८
दीप्तेयं गतिशास्त्र	१२३	नखदशनपदेषु मन्द	७८
दीर्घाङ्गनां जलदघोष	५२	नखदशनपदे सतृष्ण	७८
दीर्घायता नां प्रवदन्ति	८६	नखागरुशिल्हक	१८
दीर्घैः कृशैर्नंदनकर्ण	५२	नयति वशं यां वाञ्छति	३३
दुःकूलः कालपुष्पं स्यात्	२१	नरः संलक्षितो	५५
दुःखं मुखञ्च मम	६	नरोत्तमो मन्मथ	११७
दुःखाविष्करणं तन्व्या	४८	नवमर्कटिकामूलं	३१
दुःसहेन शिशिरेण निर्भरं	८३	नागच्छति प्रियतमे	४९
दुर्भगा चोदनेनापि	७६	नागबलाद्वयमूलं	३२
दुर्भगा सुभगा चैव	७५	नाथ मत्कङ्कणन्यस्तं	४९
दुहित्री चोदनेनापि	७६	नानाविचित्रैः सुरतो	३
दूती नियोज्यते कार्ये	६०	नानाविदग्धवासा	१४
दूत्याभिनन्दित	६२	नानाविधा आकरयोनि	१३
दृष्टिं खेदालसां कुर्या	११७	नाभिहृत्कण्ठदेशेषु	६५
दृष्टा दूरेऽपि यूनः	८२	नाभौ कपोले स्फुरिता	९४
देहार्पणे तु कार्पासं	२५	नाभ्यां उरु कुक्ष	६९
दैवेन यदि कदाचित्	५७	नायकेषु मृगाक्षीणां	४५
दोषापभृष्टं मणिम	१०	नायाति प्रहरार्धमेव	४९
दोषास्तथा बिन्दुकलं	१०	नारीनीचरतोद्विग्ना	३०
द्वयोस्त्रिरश्चोः सरतो	१०२	नारीवराङ्गोदरमध्य	७१
द्विदन्तमन्दंशमतो	८८	नारीसङ्केतकं वक्ष्ये	२०
द्वे लोचने द्वे वदने	७२	नारी स्यन्दति सुचिरं	३३
धम्मिल्लं बद्धमुक्तं	४५	नार्या नृजङ्घायुग	१०१
धारयति वीजवेगं	३२	नार्या यदा बाहुनिपक्त	१०८
धीरता विनयोच्छेद	११६	नितम्बाच्छादितं शीघ्रं	११७
धूमितमगरुशिण्डक	१६	नितम्बिनी यत्र वदन्ति	१०२
धृतं निजे वक्षसि	१०७	नितम्बिन्या धीरै	१०६
धैर्यवान् मोहनात् पूर्वं	११९	नितान्तनिःस्यन्दि-तनो	७०
ध्यातो भास्वरपद्मराग	७३	निदाघशरतोः बालां	६४

निपीडेदूरूयुगेन १००
निपुणं चोदयेन्नाडीं ७७
निर्भिन्नयोजितं पूगे २८
निवेष्टयेद् बाहुयुगेन १०८
निःशङ्कमर्पयेद् गात्रं ११५
नीचद्वयं च वडवा ५५
नीतं शिरश्चैकपदं १०१
नृकूर्परद्वन्द्वविलम्ब १०८
नृपवासकगृहयोग्या १७
नृहस्तयोः पादतले १०७
पञ्चबाणक्षतेन्य २५
पञ्चशिक्षापरोभूत्वा १२०
पञ्चजशैलकशिह्लिक १५
पद्मस्तृतीयके दामे २२
परदराभिगमनं १२१
परस्परं स्त्रीपुरूषौ १६
परिणाहारोरोभ्यां ५१
पर्यङ्कमेकेन यदा ७८
पशुकरणरते ७९
पादाग्रजङ्घोरूषु ६८
पादौस्थितावात्महनु ९७
पादौस्थितौ वल्लभनाभि १००
पान्थैरात्मनितम्बिनी ५३
पारदुङ्कणतेयोपदाक ३३
पार्श्वेस्थितानां मृग १०४
पिण्डाच्छुक्राधिकात् पुत्र १२०
पिष्ट्वा सहकाररसै १६
पिष्ट्वा तेषां विलेपेन ३२
पीनकठिनकुचभागं ५३
पुत्री सञ्चोदनादेव ७६
पृष्ठसंश्लेषपर्णं च २७
पृष्ठे पश्चाद्दयित १०३
पोटली वस्त्रपुष्पाणां २०
प्रकम्पि पर्यङ्कसुघर्घरी ८
प्रकाशो बाहुमूलस्य ५८
प्रक्रान्ते सुरते पश्चात् ११५
प्रगल्भा युवती दक्षा ६०
प्रचण्डवेगाः कृत धातसंगा ८०
प्रज्ञा कलायौवन ७
प्रतिपदमदन ६०
प्रथममपररामा ५८
प्रथममुदितमस्मन् १२२
प्रम्लाननिर्माल्यमिवो १९
प्रयत्नतो वारणमङ्गनानां ३७
प्रवरः सक्षमे ज्ञेयः २२
प्रवृत्ते मोहने तिष्ठेत् ११७
प्रवेश्यते तर्जनिका ११२
प्रसाधनानां दयिता ३७
प्रस्विन्नवदन चैव ६६
प्रस्विन्नवदना कान्ता ११५
प्रहारः पादाभ्यां यमन ३९
प्रहृष्टचेतः शुकसारिका ९
प्राक्पाणिग्रहणाद् ४१
प्राणेश्वरस्य दयिता ५७
प्रातः सूर्यमरीचिरेव ७३
प्रासेषु शृङ्गाररसाश्रयेषु ४३
प्रियं मृगाक्षी सरलाङ्ग्यष्टि ८९
प्रेमदाक्षिण्यवृत्तिश्च ४३
प्रौढेच्छा याभिरूढानां ३६
फलं पुंसि स्त्रियां पुष्पं २०
फलमूलाशनो भूत्वा १२१
बन्धूकपुंस्कोकिल १२
बस्तौ कटीचोदनदोलितै १०१
बालानां चुम्बनालिङ्गौ ५८

बालयोग्याभिरूढ़ानां	६३
बालेति गीयते नारी	६३
बीजं शरच्चन्द्रकला	६९
बुद्ध्वाचैतानि लिङ्गानि	६६
बुधैर्विधेयो न	५
व्राह्मण्या कुदपुष्पं स्या	२१
भगेन लिङ्गस्यनिपीडने	१०३
भल्लातकफलं भीतौ	२५
भवेत् स्निग्धाननाङ्गी च	७६
भ्रान्तेन वक्त्रेण ललावदन्त	९३
भ्रूनेत्रादि क्रियाशालि	५०
मञ्जीकारस्कान्तिच्छुरित	१०५
मदनार्तौ च कन्दर्पः	२७
मदनासंगतः सिक्थः	२५
मधुपानमदप्रायः	४६
मध्यमावसरप्रश्ने	२३
मध्यशो यून्यपक्व	२१
मध्ये विदारितं पर्णं	२८
मन्त्रमेतं जपेन्नित्यं	१२१
मयूरकाद्याश्रितया	१०४
मलयानिलजलवासं	१७
मल्लिका वैश्यपुत्र्यां तु	२१
मांसीकुष्ठसमेतं	१८
मांसीचेति नृपाणां	१८
मा मां निपीडयात्यर्थं	११६
माल्यं निर्मलयामि	४०
माहिपं नवनीतं च	३२
मिथ्याभिलपनं हास्यं	१२१
मुक्ताफलं तरोः कस्य	४७
मुखं चतुर्विंशति नाडिका	७१
मुखसंलग्नपर्णे चा	२७
मुहूर्तमपि यं स्मरन्	१
मृदुमध्योत्तमशक्तय	५६
मृदुसान्धनतादीनां	३१
मृदुह्रस्वध्वजो यत्र	३०
मोहनं नारभेत् तावत्	६५
मोट्टायितं कुट्टमितं	३६
यः सर्वगात्रेषु दृढं करेण	१११
यच्चुम्ब्यते नागरकैः मुनीन्द्राः	९३
यत्तालुजिह्वाजनितं	८३
यथोपदेशेन	०५
यदत्र दष्ट्वाधरचूषणं	९६
यदपि सुलभेह सा	२७
यदाङ्गनापादयुगं	९८
यदङ्गुलीनां प्रविधाय	१०७
यदा तु तौ सम्पुटतां प्रपन्नौ	८६
यदा सूर्येण मार्गेण	११९
यदोरुमूलोपरि	९७
यदोरूयुग्मेन निपीड	१०२
यद्यत् स्पृशन्ति कामिन्यः	२३
यद्यः समीहते द्रष्टुं	११५
यस्मिन् भर्तुः सरलित	१०३
यस्याः सा हरिणी ज्ञेया	५५
यस्याः न सन्ति सुतरां	६२
यस्यैकस्य वशात्	७४
यस्योदरान्तः पतितं प्रदत्तं	३५
यूनां समापीडित कण्ठ	१००
योनिमात्रेऽपि सन्त्येताः	७५
यो वल्लभासन्नगतो	४२
योषितः विषय-साम्यतः	८२
रजःस्नानादिमे दत्वा	११८
रजकी मालिनी धात्री	६०
रत्नोत्तमस्य हि शुभा	१३
रत्नोत्तमानां गुण	१०

रथांगहंसस्वन	८	वामोरूसंस्थापितदक्षिणो	९७
रदोष्ठसंयन्त्रणतः	८८	वायव्यावृतवह्निमण्डल	७३
रदैरनेकैर्मणिबिन्दु	८८	विकारो यो वरस्त्रीणां	४६
रागातिरक्त-परिवर्धित	९१	विचित्रसत्पट्टवितान	८
रागाभिलक्ष्यं स्फुटमोष्ठ-देशे	८७	विचुम्बनार्थं नमयेत् तदीयं	८९
राजपुत्रे द्वितीयेन्दु	२१	विचूष्यते शीघ्रतरं	९६
राजा धर्मरतोऽनु	१२३	वितन्यमाना प्रतता	५
रामस्तु पञ्चमे यामे	२२	विधायकं कल्पज शास्त्रविद्भिः	१०४
रूक्षा कृशा विवर्णाङ्गी	७६	विनाऽपि योनिलिङ्गाभ्यां	७०
रेफस्य सविसर्गमीश्वर	७४	विन्यस्यते यत्र यदोरूरेको	९९
ललितं चेत्यमी हावा	३६	विभावयेत्तद्दयिता	७०
ललितगमना तन्वी श्यामा	५३	विमण्डना एव कृताः	८९
लिङ्गाङ्गुलिभ्यां तु तथा	७२	विविधरतिरताः कलासु	७९
लीला विलासो हावश्च	३६	विविधविधिविधानं	१२२
लेपान्निरन्तरं तस्य	३१	विशुद्धभावो चित्र	८
लोकेश्वरादिकेभ्यो	१४	विसुंष्ठुलोवेशमयो	४४
वंशोद्योतकरं पुत्रं	१०२	विसर्गमध्यं प्रणवादिमध्यं	७१
वक्त्रे मुखं नयनयोः	९२	वृक्षाधिरूढमुपगूहन	९०
वक्रीकृतास्येन गले	९४	वृद्धा ततः परंज्ञेया	६३
वक्त्रोऽर्धचन्द्रः कथितो	८६	वृद्धियाते रतावेगे	११६
वणिक्पुत्र्या सरोजं च	२१	वृथा स्मितक्रोध चमत्कृतिश्च	४२
वरकामुकः पर्यन्ताला	१४	वेणीबन्धकपर्दिनी	४१
वरतनु वासय शीघ्रं	१७	वेशेषु क्षणिका स्पृहा	४६
वर्णप्रभेदैर्मणि	१०	वेष्टनं रक्तसूत्रेण	२५
वल्लभानां पुरः प्रोक्तं	४७	वैदग्ध्यवासाः शुचयोः	७९
वाच्यानां च पदार्थानां	४५	वैदूर्य एक शिखिकण्ठ	१३
वात्स्यायनादिरचितं	११७	व्यक्तीभवन्नखपदा	९२
वाद्ये चन्दनपङ्क	२८	व्याजेन चुम्बनादीनां	६६
वामत्वमनुबन्धश्च	११६	व्याहारः स्वपनं मुहुः	४९
वाभ्रुवां सुखेष्वपि	४८	शक्तितो दक्षिणां दत्वा	११८
वामांगभागोपरि शुक्ल	६८	शशप्लुतं पञ्च नख	८६
वामे पुत्री समाख्याता	७५	शशवृषभाश्वाः पुरूषाः	५१

शशिकरवेदकलाः	१७	सतां हि सम्मानसहस्त्र	२०
शिखाश्रये औ कथितो	६७	सती कुचेअसती कक्षे	७७
शिथिलाङ्गी निरूत्साहा	११७	सती चैवासती चैव	७४
शीतोष्णाङ्गी बहुतर	५४	सतीवामेअसती सव्ये	७५
शुक्त्युद्भवानां मृदुसूक्ष्म	११	सती संचोदनाचैव	७५
शुक्ले वामकरे ज्ञेया	२३	सती संचोदनादेव	७६
शुद्धोऽपि त्रिविधो मन्द्र	३५	सत्पुत्रालोकानात्यन्तप्रीति	१२२
शुद्धोअसुक्तश्च सङ्कीर्णं	३५	सत्वोपकारपरमा हि ममा	६
शृङ्गारशास्त्रतत्वज्ञै	३७	सदा चतुःषष्टिकला	८१
शेपं तु पूर्ववत् कुर्वन्	१२२	सनिष्पतन्मौक्तिक	८५
शैलज-वाल-लवंगम	१८	सप्रेमदानैर्मधुरै	६१
श्रीवास-शिद्धकचन्दन	१९	सबाष्पतम्मौक्तिक	८५
श्रुतिसद्याङ्गलिक्षेप	५८	सप्रेमदानैर्मधुरै	६१
श्रूयते चैव कर्णाटे	३०	सबाष्पगद्दालायः	४३
श्लिष्टाधरोत्पादितपून्नि	८४	सभा गजबीजरसा	३४
सङ्कल्पज व्याधिनिपीडिता	५	समधिककफा स्वल्पाहारा	५३
सङ्कीर्तने महोल्लासा	५८	समसौख्यं निरून्मेपः	११०
सङ्गृह्य वामाङगुलिकाग्रहश्च	१११	समुन्नींतं पश्चात् परम	१०६
सङ्गृह्य सारभागं	१४	समुल्लसितडम्बरं	१
सङ्गोदनार्थे मदनाडिकानां	९३	सम्प्राप्य बाला करशाखयेव	७२
सङ्गोद्य नाडिकां पुत्रीं	११९	सम्पूपणे मर्दनाताडने च	८१
रक्तपटसूत्रेण	२८	सम्यङ्नतीकृत्य कपोल	९४
संरागारक्तिरागेपु	२८	सर्वतोऽभ्यन्तरे चैव	७५
संरागे रक्तरागे च	२६	सर्वांगदेशे मदनस्य	६९
संवेष्टय यत्राङ्गुलिकां	१११	सव्याधीर्ष्यालु-कुव्यक्ति	५७
संस्पर्शपूर्वमबलापपारिभ्भणं	९०	ससाध्वसं च सस्नेहं	११४
संस्थापयेदूरूयुगं	९९	सहसैव सा वराकी	५९
सकृदपि न च साध्या	५८	सांकर्ये प्रियदर्शनहर्षात्	३७
सखि प्रेयान् स्वामी	३८	साध्या लिंगविपर्यस्ता	६०
सखी गोपालिका चेटी	६०	सा मध्यमापृष्ठगता	११२
संख्याः पुरः श्वसन्न	४९	सिक्थेन निर्मिता मुद्रा	२५
सततं सेव्यमानापि	६४	सिद्धप्रयोगसन्दोहान्	३१

सीत्कारश्च हकारश्च	६६
सीमन्तिनीपुरूषयोरूभयोः	११७
सुखे निलीनानि षडिन्द्रियणि	७०
सुजाति रत्नं परिवृद्धि	१२
सुतार्थिनां नापि	४
सुतार्थे बद्धचित्तानां	११८
सुदुर्लभाभिः वरसुन्दरीभिः	७
सुकर्यामनिशं यस्यां	६६
सुभगाश्चोदनान्नारी	७६
सुरभि सुरतभावा	८१
सुरदारुमरुकमुस्तक	१९
सुरम्या एकवर्णाया	१२०
सुवचनसमदनाः	५१
सुवर्णबीजं सुतजारयुक्तं	३४
सुशक्तिवह्निप्रविदार्य	८३
सूक्ष्मीकृताग्रा रसना	९५
सूक्ष्मेलाकस्तूरी	१७
सूत्रैरस्नेहके कृष्णैः	२८
सेवनं योपितां कुर्या	६३
सैवेयं भावनीया स्यात्	६६
स्कन्धाश्रितैकमणि	५०
स्खलितप्रियस्य संयम	३८
स्खलितबहुलं पाद	४२
स्तनस्य पृष्ठे विरलानि	८६
स्तने कपोले च हनुप्रदेशे	८५
स्त्रियः स्वपार्श्वद्वितीया	९९
स्त्रियो यात्रादिसंरक्ता	५९
स्त्रीसौख्यलिंगमत	११८
स्थानेपु चैतेपु	६८
स्थितस्य कुड्याश्रित	९८
स्थिताङ्गनाबाहुनिपक्त	१०५
स्थौल्यं गल ललितां	५२
स्नानोद्वर्तनचूर्णे	१५
स्नेहच्छेदे प्रवालं	२४
स्नेहे सुगन्धिवस्तूनि	२४
स्पृष्ट्वा यदा हस्ततलेन	११०
स्मरसद्मसु कण्डूतिं	५६
स्मरणोद्भिन्नदेहत्वे	२६
स्मितमपि मुहुर्व्यर्थः	४२
स्मितशुष्करुदित	३९
स्याद् यन्मुखे तत्तिलकं	३४
स्वाङ्गावयववस्त्राणां	५८
स्वेदाम्बुकणोपचिता	५३
हन्याल्ललाटफलकेन	९२
हस्तिनीवृषयोर्वडवा	५५
हरिणीशशयोर्योगे	५५
हर्तुं हृदयसर्वस्वं	११४
हस्तपादांगविन्यास	५०
हिक्शब्दवत्च्छ्वासनिरोध	८५
हिताय करुणासिन्धुः	११८
हित्वा कनिष्ठाङ्गुलिजव्रणानि	८७
हित्वात्मकाम	०३
हृष्यत्कपोतादिविहङ्गमानां	८४
हेमतारक-ताम्राणि	१२१
हेमन्ते शिशिरे योग्या	६४
हेलाविच्छित्तिविब्वोक	३६
ह्रीभयालङ्कृताः कान्ता	६०

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 14186

COMPARATIVE AESTHETICS : EAST AND WEST

Professor Angraj Chaudhary

The present work is concerned with some important issues of Imaginative literature and has made their critical and comparative study from Indian and European points of view. The issues are (i) nature of Imaginative literature, (2) Art as mimesis, (3) *Rasa* and Beauty, (4) the purposes and functions of Kāvya (5) the language of literature, and (6) drama as a Literature genre.

It has been shown here that the soul of imaginative literature is *Rasa*. In the chapter on 'Art as mimesis' several meanings of imitation from 'bare copying' to 'creative activity' have been brought out.

In a separate chapter the book exhaustively deals with the three powers of word viz., *Abhidhā, Lakṣaṇā and Vyañjanā* which have been analysed and compared with the European view of Language and its different powers. The problem of communication between the writer and the readers and the role of language in this context have been thoroughly discussed. A detailed study of style has also been made here.

While making a study of drama it has been shown why tragedy grew in the West and why it did not find congenial siul in India.

The book is a definite contribution to the study of Comparative Aesthetics inasmuch as it brings out the points of agreement and difference between the Aestheticians of India and those of Europe. For those who are interested in a general theory of Aesthetics on either side of the world, this book with its exhaustive bibliography at the end will go a long way to serve their purpose.

Rs. 300.00

NEW RELEASES FOR E.B.L.

1.	ENCYCLOPAEDIA OF VEDĀNTA—Prof. Ram Murti Sharma (1993)	450.00
2.	BUDDHIST PHENOMENOLOGY : A THERAVĀDA PERSPECTIVE—Chandra B. Varma (1993)	200.00
3.	THERAVĀDA BUDDHISM (Based on Pāli Sources)—RONALD, S. Copleston, Ed. by Harcharn Singh Sobti (1993)	250.00
4.	ESSAYS ON BUDDHISM AND PĀLI LITERATURE—Angraj Chaudhary (1994)	250.00
5.	VIJÑAPTIMĀTRATĀSIDDHI (VIṀŚATIKĀ) with Introduction, Translation and Commentry)—T. R. Sharma (1993)	150.00
6.	THE GANDHAVAṀŚA (A History of Pāli Literature)—Bimalendra Kumar (1992)	90.00
7.	SATYA-SUDHĀ (A Critical Evoluation of Dr. Satya Vrat Shastri Creative Works)—Ed. Satya Vrat Varma (1993)	700.00
8.	WORD INDEX TO THE VĀKYAPADĪYA OF BHARTṚHARI—Prof. Saroja Bhate & Yashodhara Kar (1992)	450.00
9.	GLORY THAT WAS BUNDELKHAND (श्री महेन्द्रकुमार मानव अभिनन्दन ग्रन्थ)—Ed. Prof. K.D. Bajpai (1993)	800.00
10.	ŚAKTIVĀDA : Theory of Expressive Power of Words—Dr. V. P. Bhatt (1994)	300.00
11.	BHĀVNĀVIVEKA OF MAṆḌAN MIŚARA (English Translation with Notes)—Dr. V. P. Bhatt (1994)	300.00
12.	A CONCISE ENCYCLOPAEDIA OF EARLY BUDDHIST PHILOSOPHY—Chandra B. Varma (1992)	300.00
13.	DURGĀ : THEME IN VARANASI WALL PAINTINGS—Prem Shankar Dwivedi (1993)	300.00
14.	POETRY CREATIVITY AND AESTHETIC EXPERIENCE—Dr. Natwar Lal Joshi (1994)	300.00

Please mail your order to : Ph. : 2520287

Eastern Book Linkers
(INDOLOGICAL PUBLISHERS & BOOKSELLERS)
5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar, DELHI-110007